शिवा-साधना

[ऐतिहासिक नाटक]

प्रेमी

शिवा-साधना

[ऐतिहासिक नाटक]

लेखक

श्री हरिकृष्ण प्रेमी

प्रकाशक

हिन्दी भवन, लाहौर

मूल्य १।)

पहला संस्करण—सितंबर १६३७
दूसरा संस्करण—अप्रैल १६३६

*Printed & Published by D. C. Narang
at the H. B. Press, Lahore.*

प्रायश्चित्त

अपराधी पुत्र की उदार और स्नेहशील पिता

श्री बालमुकुन्द विजयवर्गीय

के चरणों में प्रायश्चित्त-स्वरूप तुच्छ भेंट।

—*प्रेमी*

लेखक की अन्य रचनाएँ

नाटक

रक्षा-बंधन	।।।=)
प्रतिशोध	१)
पाताल विजय	।।।)

काव्य

अनन्त के पथ पर	१)
आँखों में	१।)
जादूगरनी	।।।)

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र

शिवाजी	महाराष्ट्र-वीर
शाहजी	शिवाजी के पिता
तानाजी मालुसुरे येसाजी कंक बाजी पासलकर ...	शिवाजी के बाल्यबंधु
दादाजी कोंडदेव	शिवाजी के संरक्षक
स्वामी रामदास	शिवाजी के गुरु
मोरोपंत	पेशवा
शंभूजी कावजी ... ... जीवमहाल ... ... हीरोजी फरज़ंद ... ... फिरंगाजी नरसाला ... रघुनाथ पंत ... ... बाजीप्रभु देशपांडे... ... नेताजी पालकर ... सूर्याजी मालुसुरे... ... आवाजी सोनदेव ... गोपीनाथ	मराठे सरदार शिवाजी के साथी
मोहम्मद आदिलशाह ...	बीजापुर का बादशाह
अफ़ज़लखाँ ...	बीजापुर का सेनापति
फ़ज़लमोहम्मद ...	अफ़ज़लखाँ का पुत्र
प्रतापराव मोरे ...	जावळी के मृत राजा का भाई

कृष्णाजी भास्कर ...	बीजापुर का दूत
औरंगज़ेब ...	पहले दक्षिण का मुग़ल सूबेदार पीछे दिल्ली का मुग़ल सम्राट्
मीरजुमला	औरंगज़ेब का सलाहकार
ज़फ़रखाँ	मुग़ल मंत्री
शाइस्ताखाँ	मुग़ल सेनापति
दिलेरखाँ	,,
महावतखाँ	मुग़ल सेनापति
इखलासखाँ	,,
जयसिंह	जयपुर-नरेश, मुग़ल सेनापति
जसवंतसिंह	जोधपुर-नरेश, ,,
रामसिंह	जयसिंह का पुत्र
फौलादखाँ	आगरा का कोतवाल

स्त्री-पात्र

जीजाबाई	शिवाजी की माँ
सईबाई	शिवाजी की पत्नी
यमुना	सईबाई की सहेली
अक्काबाई	रामदास की शिष्या
रोशनआरा ... जहानारा ...	औरंगज़ेब की बहनें
ज़ेबुन्निसा	औरंगज़ेब की पुत्री
सलीमा	ज़ेबुन्निसा की सहेली
बड़ी साहिबा	मोहम्मद आदिलशाह की पत्नी

R.S.

अपनी बात

लोग कहते हैं स्वर्ग और नरक दोनों इसी जगत् में है—जो आज सुख-शान्ति और वैभव का उपभोग कर रहे हैं वे स्वर्ग में रहते हैं और जो दुःख, दारिद्रय और चिंता-ज्वाला में जल रहे हैं, नरक में निवास कर रहे हैं। स्वर्ग की बात मैं नहीं कह सकता, किन्तु जब अपनी वर्तमान परिस्थितियों को देखता हूँ तो ज्ञात होता है कि नरक यही है। वर्तमान परिस्थितियों में भी मैं माँ-हिंदी के मंदिर में यह नवीन नाटक लेकर उपस्थित हो रहा हूँ—यह आश्चर्य की बात है। जिस स्थिति में दिमाग़ के पुर्जों को ठीक रखना भी असंभव है—मैं कैसे यह पुस्तक लिख सका, यह मेरे लिए भी आश्चर्य की बात है।

लंबी भूमिका लिखने को न मेरे पास समय है और न निश्चिंतता। मैं जिस खुमार में पुस्तक लिख गया, वह तो अब आँखों से उतर चुका है। बरसाती नाले का ज्वार उतर जाने पर उसकी जो अवस्था होती है, वही मेरी है। उत्साह-हीन लेखनी से अपने इस नाटक के विषय में कुछ सफ़ाई देकर अपनी बात ख़तम किए देता हूँ।

पाठकों के सामने यह मेरा चौथा नाटक है। पहला था—'स्वर्ण विहान' (पद्य-नाटिका) जिसे मैंने अपनी स्वर्गीय जननी को समर्पित किया था। उस पुस्तक का सरकार ने गला घोंट दिया। इसके बाद मैंने 'पाताल-विजय' नाटक लिखा—जो मदालसा के पौराणिक कथानक पर अवलंबित है। लिखने के क्रम से वह नाटक दूसरा किंतु प्रकाशन के क्रम से तीसरा है। 'पाताल-विजय' के बाद लिखा गया 'रक्षा-बंधन' नाटक। यह पहले प्रकाशित हुआ और अधिक लोक-प्रिय भी हुआ। इस पुस्तक पर साहित्य-सम्मेलन ने मानसिंह पुरस्कार प्रदान किया, तथा अजमेर और राजपूताना बोर्ड ने एफ. ए. और देहली बोर्ड ने मैट्रिक परीक्षा में इसे स्थान दिया। साहित्यिकों ने भी इसकी प्रशंसा की। कई राष्ट्रीय संस्थाओं ने इसे अपनाया, जिससे इसके कई संस्करण हाथों हाथ बिक गए। इससे मुझे प्रोत्साहन मिला।

'रक्षा-बंधन' के स्वागत ने मुझे उत्साहित तो किया, किंतु विपत्तियों ने मेरी कलम तोड़ दी। अंतर् में कुछ लिखने की बेचैनी लिए हुए मैं ग़रीब आदमी के स्नेह-हीन दीपक की तरह बुझता-सा जलता रहा। एक बार फिर भभक कर अपने अस्तित्व का परिचय देने आया हूँ। यह 'शिवा-साधना' नाटक मेरी वही भभक है। संसार से स्नेह मिला तो भारती-मन्दिर में यह दीपक अपनी लौ लगाए रहेगा, नहीं तो परिस्थितियों के कठोर हाथों ने उसके अरमानों को कुचल तो डाला ही है, वे इसके अस्तित्व को भी धूल में मिला देंगे।

पंजाब में ज्ञान की बाँसुरी और कर्म का शंख फूकने वाली बहन कुमारी लज्जावती ने एक बार मुझसे कहा था कि हमारे भारतीय साहित्य में— हिंदी और उर्दू तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं के साहित्य

में—हिन्दुओं और मुसलमानों को अलग करने वाला साहित्य तो बहुत बढ़ रहा है, उन्हें मिलाने का प्रयत्न बहुत थोड़े साहित्यकार कर रहे हैं। तुम्हें इस दिशा में प्रयत्न करना चाहिए। इसी लक्ष्य को सामने रखकर उन्होंने मुझे ऐतिहासिक नाटक लिखने का आदेश दिया।

नाटक लिखने में मैं सफल हो सकता हूँ इस विषय में मुझे पूरा विश्वास न था। 'पाताल-विजय' अप्रकाशित था; स्वर्ण-विहान का अच्छा स्वागत हुआ था, किंतु वह पूर्ण रूप से नाटक न था। फिर भी मैंने बहन लज्जावती जी की आज्ञा मानकर 'रक्षा-बंधन' लिखा। 'शिवा साधना' के रूप में इस दिशा में मेरा यह दूसरा पग है।

शिवाजी के चरित्र को साहित्यकारों ने जिस रूप में अंकित किया है, उससे हिंदुओं और मुसलमानों के हृदय दूर ही होते हैं। इसके विपरीत मैंने इस नाटक में बताया है कि शिवाजी न केवल महाराष्ट्र में बल्कि संपूर्ण भारतवर्ष में 'जनता का स्वराज्य' स्थापित करना चाहते थे; उनके हृदय में मुसलमानों के प्रति कोई द्वेष न था। मेरी इस धारणा की इतिहास भी पुष्टि करता है। आधुनिक इतिहासकारों ने इस बात को एक स्वर से माना है कि शिवाजी ने किसी व्यक्ति को केवल इसलिए नहीं दंड दिया कि वह मुसलमान है। उन्होंने मस्जिदों को कभी आँच न आने दी; उन्हें जहाँ भी कुरान-शरीफ़ प्राप्त हुआ, उसे उन्होंने आदर के साथ किसी मौलवी या काज़ी के पास भिजवा दिया। कट्टर हिंदू होते हुए भी उन्हें इस्लाम का अस्तित्व असह्य न था। कोंकण के सूबेदार मौलाना अहमद की रूपवती पुत्रवधू को उनके अनुचर आवाजी सोनदेव ने जब शिवाजी के सामने उपस्थित किया तथा उसे उप-

पत्नी के रूप में ग्रहण करने को कहा, उस समय उन्होंने जो उत्तर दिया वह उनकी आत्मा की उच्चता का अनुपम उदाहरण है। यह घटना पहले अंक के चौथे दृश्य में बताई गई है। इस दृश्य में यह बात कि जीजाबाई ने शिवाजी की परीक्षा लेने के लिए सोनदेव को ऐसा करने को कहा था, मेरी अपनी कल्पना है। वास्तविक बात यही है कि सोनदेव ने उस अनुपम सुंदरी रमणी को शिवाजी को उपहार स्वरूप भेंट किया था, किंतु शिवाजी ने "यदि तुम मेरी माँ होतीं तो क्या विधाता ने मुझे सौंदर्य की दौलत देने में कंजूसी की होती" कह कर अपने हृदय की महानता और पावनता का परिचय दिया। इसी तरह की अनेक घटनाएँ हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि शिवाजी का मुसलमानों से द्वेष न था। उनकी सेना में मुसलमान भी नौकर थे। मैंने नाटक में जो घटनाएँ इस प्रकार की दी हैं, वे बिना ऐतिहासिक आधार के नहीं दीं।

यह ऐतिहासिक नाटक है। नाटक में इतिहास की अक्षरशः रक्षा करना कठिन कार्य होता है, फिर भी सभी मूल घटनाएँ मैंने अक्षरशः इतिहास के अनुसार ही अंकित की हैं, अपितु इतना भी कह सकता हूँ कि ऐतिहासिक घटनाओं के क्रम आदि का जितना ध्यान इस नाटक में रखा गया है उतना शायद अब तक किसी ऐतिहासिक नाटक में न रखा गया होगा।

इस नाटक में औरंगज़ेब की पुत्री ज़ेबुन्निसा के शिवाजी के प्रति आकर्षित होने की घटना ही ऐसी है जिस पर ऐतिहासिक महानुभाव त्योरियाँ चढ़ा सकते हैं। प्रोफ़ेसर सरकार ने "*Studies in Mughal*

India" में जेबुन्निसा के शिवाजी के प्रति आकर्षण को गलत साबित किया है। मैं यह नहीं कह सकता कि सरकार साहब कहाँ तक सत्य कहते हैं, क्योंकि किसी बादशाह की पुत्री के मन का चित्रण करने की इतिहासकारों को प्रायः आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती और फिर जो बात हृदय में छिपाकर रखने की होती है, वह इतिहासकारों तक पहुँचे भी कैसे।

मराठा इतिहासकार श्री. ए. केलुसकर की मूल मराठी पुस्तक के आधार पर श्री एन. एस. तकाखव (N. S. Takakhav) ने जो '*The Life of Shivaji Maharaj*' पुस्तक लिखी है, उसमें वे लिखते हैं—

"A more romantic incident is interwoven by certain writers in their version of Agra episode. It is related that on the occasion when Shivaji was invited to the Durbar the ladies of the imperial harem out of a natural curiosity to see with their own eyes one of whose romantic escapades they had heard so much, were seated behind the curtain. Among these ladies was an unmarried daughter of Aurangzeb, known as Zebunnisa Begum. The Princess was twenty-seven years of age. It is said that the Begum fell in love with Shivaji, though it was not perhaps merely a case of love at first sight. Already had she heard, so runs this romantic accouut, of his valour and efforts for the advancement of his country's liberties. Already had the fame of his romantic and soul-stirring advantures ravished her heart. His generosity towards the fallen foe, his filial devotion, his examplary piety towards the gods of his country had touched in her breast a chord of sympathy. And now had he come after achieving so many labours in the furtherance of his country's cause, after so many shocks of battle with her father's invincible forces—now had he come as a conciliated

friend and ally, to honour the hospitality of the Mogul Court. These feelings had prepared her heart for the first advances of a passion, which Shivaji's conduct in the durbar only served to make even deeper than before. It is said she vowed a firm resolve that she would either wed Shivaji or remain a virgin for life."

इससे पाठक जान सकेंगे कि यह घटना केवल मेरे ही मस्तिष्क की कल्पना नहीं है और फिर नाटकों में दो-एक पात्रों का चरित्र सर्वथा काल्पनिक भी हो सकता है। श्री द्विजेन्द्रलाल राय ने अपने नाटकों में ऐसा अनेक जगह किया है और उन्होंने इतिहास के प्रति अपने इस अपराध के लिए कभी सफ़ाई पेश नहीं की।

यहाँ पर यह लिखना भी अनुपयुक्त न होगा कि इतिहास की साधारण पाठ्य-पुस्तकों में बताया जाता है कि शिवाजी ने स्वराज्य-साधना की प्रेरणा दादाजी कोंडदेव से प्राप्त की थी। परन्तु मराठा इतिहास के विशेषज्ञ इस बात को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि दादाजी शिवाजी का हमेशा उस पथ पर जाने से निरुत्साहित करते रहे। शिवाजी को जो कुछ भी प्रेरणा मिली, वह अपनी वीरांगणा माता जीजाबाई से ही मिली थी। श्री जदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक *Shivaji and His Times* के पृष्ठ ३१ पर यह फुटनोट दिया है—

"*Tarikh-i-Shivaji* (Persian) says that in utter disgust at Shivaji's waywardness, Dadaji took poison, when Shiva was 17 years old.

एक बात नाटक की भाषा के संबंध में। साधारणतः इसकी भाषा शुद्ध हिंदी है। सारे हिंदू-पात्रों से हिंदी ही बुलवाई गई है; किंतु मुसल-

मान पात्रों के मुख से उनकी स्वाभाविक भाषा बुलवाई गई है। अभी तक हिंदी-लेखकों की यही परिपाटी रही है। हिंदी-नाटककारों में प्रसाद जी ही ऐसे हैं जिनके नाटकों में उर्दू-भाषा के शब्दों का अभाव है, किंतु उनके नाटकों में मुसलमान पात्र आए ही नहीं है।

इस नाटक में एक शब्द पगोड़ा आया है। यह उस काल का सिक्का था, जिसकी कीमत ६ रुपयों के बराबर थी।

इस नाटक में पात्र-सूची पर्याप्त लंबी होगई है; लेकिन इससे नाटक के गठन में कोई शिथिलता नहीं आई, क्योंकि अनेक पात्र ऐसे हैं जो एक-एक या दो-दो दृश्यों में आते हैं; मुख्य पात्र तो शिवाजी, जीजाबाई, रामदास और औरंगज़ेब ही हैं, जिनका अस्तित्व पहले अंक से अंतिम अंक तक बना रहता है। इन्हीं पात्रों के कारण नाटक के दृश्य अंत तक एक सूत्र में बँधे हुए हैं।

नाटक कैसा बन पड़ा है, इस विषय में मैं कुछ न कहूँगा। माँ-भारती से, साहित्य-मर्मज्ञों और पाठकों से स्नेह, आशीर्वाद और प्रोत्साहन की भीख माँगता हुआ मैं अपनी बात समाप्त करता हूँ।

—*प्रेमी*

शिवा-साधना

पहला अंक

पहला दृश्य

[तुलजापुर के भवानी-मंदिर में युवक शिवाजी, समवयस्क साथी येसाजी कंक, बाजी पासलकर और तानाजी मालुसुरे। समय—उषा-काल]

शिवाजी—मेरे स्वप्नों के संजीवन और आकांक्षाओं के आधार—ओ मावल देश के गौरव-शिखर, मुझे तुम्हारे सहयोग का गर्व है। आज मेरे जीवन के अठारहवें वर्ष का प्रथम अरुणोदय है, आज मेरी आँखों के आगे नवीन बाल-रवि का उदय हुआ है, आज मेरे सामने नवीन कर्म-पथ............

तानाजी— नवीन कर्म-पथ...........

शिवाजी— (बात काट कर) ज़रा ठहरो, नवीन कर्म-पथ की बात पीछे कहूँगा, पहले भवानी की आरती कर लें, जिनके इंगित से मेरे रक्त का प्रत्येक कण संचालित होता है।

(शिवाजी थाल में कपूर रखकर जलाते हैं, सब शिवाजी के पीछे भवानी की मूर्त्ति के अभिमुख होकर कर-बद्ध खड़े होते हैं। शिवाजी आरती करते हैं और सब मिलकर गाते हैं)

सब— जयति-जयति जय जननि भवानी!

नर-मुंडों की मालावाली,
क्यों है तेरा खप्पर खाली,
माँ, तेरे नयनों की लाली—
भरे राष्ट्र में नई जवानी!
जयति-जयति जय जननि भवानी!

धधक उठे भीषण रण-ज्वाला
उठे हाथ तेरा असिवाला,
गूँज उठे यह पर्वत-माला,
गरज उठे तेरी जय-वाणी!
जयति-जयति जय जननी भवानी!

[आरती समाप्त होती है। सब भवानी के चरणों में नत-मस्तक होते हैं]

शिवाजी—माँ, भवानी! इस उज्ज्वल आकाँक्षा की आग को अपने आशीर्वाद से तीव्र कर दो। मुझे बल दो, साहस दो, और वह अदम्य पागलपन दो, जिससे मैं स्वातंत्र्य-साधना में केवल सांसारिक सुखों की ही नहीं बल्कि प्राणों की आहुति भी दे सकूँ। निस्पृह, निर्विकार, निर्लिप्त और निरहंकार होकर कर्म कर सकूँ।

(शिवाजी उठकर मंदिर के बाहरी द्वार की ओर मुँह करके खड़े होते हैं। उनके साथी उनके दाएँ-बाएँ खड़े होते हैं।)

तानाजी—हाँ भैया शिवाजी, तो अब अपने नवीन कर्म-पथ की बात कहो न।

शिवाजी—क्यों न कहूँगा ? तुम लोगों के पराक्रम से जो तोरण गढ़ हस्तगत हुआ है, वह तो शिवा-साधना का श्री गणेश-मात्र है। अब हमारे आगे विस्तृत और नवीन पथ प्रस्तुत है। अब तक गहनतम वनों में, दुर्गम पर्वतों में, कंटकाकीर्ण कंदराओं में और सरिताओं के वर्तुल किनारों पर हिंसक वन्य पशुओं, भीषण आँधियों और बरसातों में तुम्हारे प्राणों को मौत के पालने में झुलाते हुए जो मैं दिन-रात घूमा हूँ वह केवल बचपन के कौतूहल का खेल न था, वह भावी विपत्तियों और संकटों के कठिन प्रहारों को झेलने का साहस पैदा करने की तैयारी थी ! बोलो बंधुओ, जिस महानाश के लिए मैं तुम्हारे जीवन माँग रहा हूँ, उसके लिए तुम तैयार हो ?

तानाजी—मुँह से कहने से अंतर् के निश्चय का मूल्य कम हो जाता है राजा ! फिर भी यदि कहलाना ही चाहो, तो सुनो। माँ भवानी को साक्षी कर हम विश्वास दिलाते हैं कि यदि तुम हमारे सिर बलिदान के बकरों की भाँति भवानी के चरणों पर चढ़ा दो, तब भी हमें कोई आपत्ति न होगी ! क्यों येसाजी ? क्यों बाजी ?

येसाजी—क्यों होगी ?

बाजी—कभी न होगी।

शिवाजी—इसका मुझे विश्वास है, किंतु..........

तानाजी—किंतु...! मावलों के देश में यह 'किंतु' क्यों? मावलों को परिस्थितियों ने आर्थिक दृष्टि से ग़रीब बनाया है—पर वे वचन के धनी हैं। अपने हृदय की इस संपत्ति पर उन्हें अभिमान है। उन्हें इससे संसार की कोई शक्ति वंचित नहीं कर सकती।

शिवाजी—दुखी न हो, तानाजी! मैं तुम्हारे स्वाभिमान को आघात नहीं पहुँचाना चाहता, किंतु याद रखो, वीरता एक वस्तु है, और साधना दूसरी! मृत्यु का सहसा आलिंगन आसान है, किंतु, एक दुस्साध्य और सुदीर्घ साधना के लिए जीवन का प्रत्येक पल भीषण कष्ट और नारकीय यंत्रणा में व्यतीत करना बहुत कठिन है।

बाजी—प्रकृति के कोष से हमें पहाड़ी नदियों, झरनों, चट्टानों और कंदराओं के सिवा मिला ही क्या है? ये कठिनाइयों की प्रतिमूर्त्ति हैं और साधना के प्रतीक। दिन-रात इन की गोद में पलनेवाले हम मावलों को कष्ट से भय कैसा!

शिवाजी--जो कुछ सहज प्राप्त है, उसी पर संतोष करना बहुत बड़ी दुर्बलता है। दादाजी कोंडदेव कहते हैं कि मैं पिताजी की जागीर—पूना, सूपा, बारामती, इंदापुर और मावल प्रदेशों की जागीर—लेकर संतुष्ट रहूँ। यदि महत्त्वाकांक्षा नहीं मानती, पौरुष की परीक्षा लेने ही की इच्छा होती है, तो आदिलशाही या मुगल-शाही की नौकरी कर ऊँचे मनसब पाऊँ। ठीक भी है। सीधे और

सरल मार्ग पर जाने की अपेक्षा तलवार की धार पर चलना कौन चाहेगा ? कई दिनों के भूखे के आगे प्रलोभन-देवता जब छप्पन प्रकार के भोजन सजाकर थाल लायेगा तो उस पर लात मारने का साहस कौन करेगा ? बोलो बंधुओ………

तानाजी—हम लोगों का जीवन तो तुम्हारे निकट धरोहर है भैया ! अब इस पर किसी प्रलोभन, छल, प्रपंच, भय या आशंका का अधिकार नहीं। जब तुम्हारा साथ और भवानी का आशीर्वाद प्राप्त है, तब भय किसका और आशंका कैसी ?

शिवाजी—भाइयो, भावी का परदा उठाकर उस पार किसने झाँका है ? किंतु मेरा हृदय कहता है कि तोरण में जो गुप्त कोष हस्त-गत हुआ है वह भवानी ही की अनुकंपा है। मुझे विश्वास है कि तुम लोगों की सहायता से मैं एक भारत-व्यापी क्रांति कर सकूँगा—जिस क्रांति की पुकार भग्न मंदिरों, धराशायी राज-महलों, भस्मसात पर्ण-कुटियों और रोटियों के लिए हाहाकार करनेवाले वस्त्रहीन कृषकों के हृदयों से उठ रही है।

येसाजी—क्रांति की साधना, स्वराज्य की संस्थापना, यह सब हम क्या जानें ? हम तो केवल आज्ञा-पालन………

शिवाजी—मैं विवेक-हीन आज्ञा-पालन, अंध अनुकरण, नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ तुम सब को वे आँखें प्राप्त हों जो दीन-दुखियों की आँखों के पानी में छिपी हुई आग को देख सकें, वह हृदय-प्राप्त हो जो अत्याचार के साम्राज्य को तहस-नहस करके धूल में मिला देने को आठों प्रहर आतुर रहे !

तानाजी—तुम्हारे संसर्ग से ऐसा भी हो जायगा। किंतु, तुम्हारी साधना का स्वरूप......

शिवाजी—मेरी साधना का स्वरूप वही है, जिसका चित्र तुम्हारे अंतर् का असंतोष रात-दिन तुम्हारी आँखों के सामने खींचता रहता है। मेरे शेष जीवन की एक-मात्र साधना होगी भारतवर्ष को स्वतंत्र करना, दरिद्रता की जड़ खोदना, ऊँच-नीच की भावना और धार्मिक तथा सामाजिक असहिष्णुता का अंत करना, राजनीतिक और सामाजिक दोनों प्रकार की क्रांति करना।

तानाजी—क्रांति!

शिवाजी—हाँ, बंधुओ, क्रांति। मैं ज्वालामुखी के मुँह पर खड़ा हूँ—मैं भँवर में फँसी हुई तरणी पर आसीन हूँ। आज मेरे साथी तुम हो, धन तुम हो, बल तुम हो, सेना तुम हो और मेरी आँखों के सामने है कन्या-कुमारी से लेकर कैलास तक फैली हुई जरा-जीर्ण माँ—भारत—की मूर्ति। बोलो बंधुओ, तुम युद्ध के ज्वाला-सिंधु में कूदने को तैयार हो?

सब—क्यों नहीं?

शिवाजी—तो माँ भवानी के सामने दोहराओ—हम राष्ट्र के लिए अपना शेष जीवन अर्पित करते हैं। हम देश और समाज के लाभ के लिए अपने सुखों और हितों की बलि देने को प्रस्तुत हैं। हम अपने नेता शिवाजी की आज्ञा को जब तक वह देशद्रोही या प्रमादी नहीं बनता, सदा शिरोधार्य करेंगे।

(सब दोहराते हैं)

शिवाजी—तुम तीन वीर मेरे लिए तीन करोड़ हो। येसाजी, बाजी और तानाजी को पाकर मैं त्रिभुवन के सम्राटों को चुनौती दे सकता हूँ। अच्छा, अब हमें चलना चाहिए!

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[पूना में दादाजी कोंडदेव का भवन। कोंडदेव चिंता-ग्रस्त और रुग्ण से खड़े हैं, हाथ में एक पत्र है]

कोंडदेव—मेरे रहते शाहजी पर संकट! नहीं यह कभी न हो सकेगा। (कुछ रुक कर) पर मैं करूँ तो क्या करूँ? शिवा के यौवन का उन्माद उसे भूत और भविष्य, माता और पिता किसी की ओर दृष्टि-पात नहीं करने देता।

(शिवाजी का प्रवेश)

शिवाजी—नमस्कार दादाजी! आज इतने चिंतित और उदास क्यों हैं?

कोंडदेव—उदास क्यों हूँ? क्यों शिवाजी! तुमने कभी मेरी वेदना को समझने का प्रयत्न किया? क्या तुम नहीं जानते कि शाहजी का नमक मेरी नस-नस में भिदा हुआ है; मैं अपने जीते जी उनका बाल भी बाँका होते नहीं देख सकता?

शिवाजी—यह मैं जानता हूँ, दादाजी! वह घटना स्वामी भक्ति के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी रहेगी, जब भूल से आपने हमारी वाटिका से एक आम तोड़ लिया था और बाद में इस अपराध में अपना हाथ काटने को तैयार हो गये थे। आपको पिताजी की चिन्ता होना अत्यन्त स्वाभाविक है!

कोंडदेव—केवल तुम्हारे पिताजी की नहीं, तुम्हारी भी। देखो भैया जवानी के ज्वार-भाटे को दैनिक जीवन का प्रवाह नहीं बनाया जा सकता। तुम्हें समझदारी से......

शिवाजी—आप क्या चाहते हैं?

कोंडदेव—मैं चाहता हूँ तुम्हें सुखी और संपन्न देखना और चाहता हूँ तुम्हें अपने पिताजी की मान-मर्यादा में चार चाँद लगाते पाकर प्रसन्न होना। तुम तो बीजापुर की सीमा में स्थित एक के बाद एक गढ़ हस्तगत करते जा रहे हो, उधर बीजापुर के दरबार में तुम्हारे पिताजी पर क्या बीत रही है इस पर विचार नहीं करते। मैं तुम्हारा संरक्षक हूँ—मेरे रहते यह…(खाँसी उठती है और आगे बोलने में असमर्थ रहते हैं)

शिवाजी—दादाजी, मुझे विश्वास है कि वह दिन आएगा, जब पिताजी मेरे कार्यों का समर्थन करेंगे!

कोंडदेव—यह लो, यह उनका पत्र। उन्होंने तुम्हें इन हरकतों से बाज़ आने को लिखा है।

शिवाजी—(पत्र पढ़कर विचार-मग्न हो जाते हैं) तो क्या मेरी साधना अधूरी ही रह जायगी! इधर पिताजी

का जीवन, उधर राष्ट्र का उद्धार, दो में से एक को चुनना है।

(सहसा जीजाबाई का प्रवेश, शिवाजी माँ के चरण छूते हैं)

जीजा—अजर-अमर बनो बेटा! आज यह फूल मुरझाया-सा क्यों है?

कोंडदेव—बोलो, माँ के सुहाग को……

शिवाजी—न, दादाजी! आगे कुछ न कहिए। माँ! (कंठावरोध)

जीजा—दुखी न हो बेटा! दादाजी, आप फिर पुराना पचड़ा ले बैठे। मेरे सुहाग की बात क्यों करते हो? मेरे सुहाग की लाली तो शत्रु के रक्त से रँगी जाकर ही गहरी हो सकेगी।

कोंडदेव—जीजाबाई, मैंने धूप में बाल सफेद नहीं किए हैं। मैं आपकी और शिवाजी की आकाँक्षाओं को समझता हूँ, पर नीति का तकाज़ा है कि कार्य इस प्रकार साधो कि साँप मरे पर लाठी न टूटे। शाहजी की जागीर तो शिवाजी की है ही, बीजापुर या मुगलों को सहायता दे कर अपना राज्य और पद-विस्तार करना भी सरल है। फिर राज-विद्रोह ही की……

जीजा—जो राज्य जनता की अनुमति के बिना……

कोंडदेव—अच्छा, राज-विद्रोह न सही; पर तुम्हारा पति के प्रति, शिवाजी का पिता के प्रति, और मेरा स्वामी के प्रति कर्तव्य क्या कुछ नहीं चाहता?

जीजा—कर्तव्य! जीजाबाई ने न पिता का स्नेह पाया, न पति का प्रेम और न ऐश्वर्य का आशीर्वाद। उन्होंने तो वर्षों से

मेरा मुँह नहीं देखा। शायद वे समझते होंगे—नारी अबला है, वह कठोर संसार से संग्राम नहीं कर सकती, संकटों से लोहा नहीं ले सकती, पिता और पति से त्यक्त हो कर केवल सिसक-सिसक कर रोना, और रो-रो कर मर जाना जानती है। दीपक की तरह तिल-तिल जल कर मर जाना ही उसकी अंतिम निधि है। अब संसार देखेगा कि वह क्रांति की महाज्वाला भी प्रज्वलित कर सकती है। बेटा, मेरे अन्तःकरण में अहर्निश एक असन्तोष प्रज्वलित रहता है, उसे तुम्हारे बिना कौन शान्त कर सकता है ?

शिवाजी—माँ ! (पैरों में गिर पड़ते हैं)

जीजा—उठो बेटा ! (उठाती है) मैं पिता, पति, बन्धु-बांधव, सुख, स्वार्थ कुछ नहीं जानती। मैं केवल देश को जानती हूँ और तुम्हें आदेश करती हूँ कि देश की स्वाधीनता ही तुम्हारे जीवन की चरम साधना हो।

कोंडदेव—पहाड़ से टकरा कर उसे चूर-चूर करने का प्रयत्न आत्म-हत्या है, बहन ! सेना, धन......साधन......

जीजा—सेना ! धन ! सब भवानी की दया से प्राप्त होगा। वन-वासी राम के पास सेना कहाँ से आई थी ? निर्वासित, राज्य-वंचित पांडवों को सेना और धन कहाँ से प्राप्त हुआ था ? मैंने शिवाजी को बचपन से रामायण और महाभारत की शिक्षा दी है। वह क्या व्यर्थ जायगी ? इच्छा चाहिए, कोंडदेव ! सेना भवानी की कृपा से बहुत आ जायगी। ये भूखे-नंगे मराठे सह्याद्रि की पर्वत-माला में आश्रय-हीन घूम रहे हैं। ये प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कोई

माई का लाल इन्हें पुकारे, संगठित कर एक झंडे के नीचे लाये। राज-विद्रोह, पितृ-द्रोह या चाहे जिस नाम से पुकारा जाय, शिवा का कार्य माँ के आशीर्वाद की छाया में आगे बढ़ेगा।

कोंडदेव—किन्तु, कोंडदेव देश को नहीं जानता, धर्म को नहीं जानता, वह केवल शाहजी को जानता है। मेरे जीते जी शाहजी का जीवन संकट में पड़े यह मैं नहीं देख सकता। लो बहन, तुम्हारी इच्छा पूरी हो (एक ज़हर की पुड़िया निकाल कर खा लेते हैं) मैं बहुत दिन जी लिया, अब बिदा!

(लड़खड़ाकर गिरते हैं)

जीजा—बेचारे स्वामि-भक्त! तुम सच्चे हो कोंडदेव! किंतु क्या किया जाय, देश सर्वोपरि है।

शिवाजी—येसाजी! तानाजी!!

(येसाजी व तानाजी का प्रवेश)

शिवाजी—हाय दादा, तुमने यह क्या किया?

कोंडदेव—खिन्न न हो भैया, मैं जाते समय तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी साधना सफल हो।

जीजा—दादा को अंदर ले चलो!

(सब कोंडदेव को उठाकर ले जाते हैं)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[बीजापुर के किले का एक भाग। शाहजी जीवित अवस्था में ही ईंटों में चुने जा रहे हैं। ईंटें कंधों के कुछ नीचे तक पहुँच चुकी हैं। सामने बीजापुर का बूढ़ा बादशाह महमूद आदिलशाह बैठा हुआ है। पास ही बड़ी बेगम (जिन्हें बड़ी साहिबा कहा जाता है) अफ़ज़लखाँ और दूसरे सरदार बैठे हैं]

महमूद आदिल—मेरे दोस्त शाहजी, आज तुम्हें इस हालत में देखकर मेरे कलेजे पर बर्छियाँ चल रही हैं।

बड़ी साहिबा—लेकिन सल्तनत का निज़ाम करने के लिए ऐसे सख़्त काम करने ही पड़ते हैं।

अफ़ज़ल—आस्तीन के साँप को········

महमूद आदिल—चुप रहो अफ़ज़ल! शाहजी! बीजापुर की सल्तनत तुम्हारे अहसान को कभी नहीं भूल सकती। कर्नाटक के बाग़ियों को दबाना और मुग़लों से लोहा लेना तुम्हारा ही काम था। मैं नहीं चाहता कि अपने ऐसे बहादुर दोस्त से हाथ धो बैठूँ। तुम सिर्फ सचाई को क़बूल कर लो। शिवाजी की बग़ावत में तुम्हारा हाथ है, इसे मान लो।

शाहजी—शाहजी ने अपने जीवन में झूठ नहीं बोला—आज भी झूठ बोलकर वह जीवन-रक्षा नहीं चाहता। शिवाजी के कार्यों से मेरा कोई सबंध नहीं है। जिस शासक के राज्य को दृढ़

बनाने और आक्रमणों से बचाने के लिए मैंने जवानी के सुनहले दिन खर्च कर डाले, आज उससे मैं दया की भीख माँग कर अपने आपको छोटा नहीं बनाना चाहता। शाहजी ने स्वामि-भक्ति में कभी कमी नहीं रखी, इसका उसे संतोष है।

बड़ी साहिबा—तुम हमें बच्चा समझते हो, शाहजी! तुम हिंदुओं ने मिलकर मुसलमानी हुकूमत को मिटा देने की साज़िश की है, क्या इससे तुम इनकार कर सकते हो!

शाहजी—हम हिंदुओं ने ग़ैरों को गैर समझा ही नहीं। यहाँ शक आए, हूण आए और न जाने कौन-कौन आए। वे हमारे बन कर रहे और हम में मिल गए। हमने तो मुसलमानों के लिए भी अपना हृदय खोल दिया था, पर आप लोग अब दरवाज़े पर ही खड़े हैं। मैं अपने ही अतीत की ओर घूम कर देखता हूँ, तो कलेजे में एक हूक उठती है। अहमदनगर का नमक खाया था, इसलिए जब मुग़लों ने उसे मिट्टी में मिला दिया, तब शाहजी ने ही उसके पुनर्जीवन का विफल प्रयत्न किया था। जब से आप की सेवा में आया हूँ, स्वतंत्रता-प्रिय हिंदू सरदारों के ख़ून से दक्षिण की चप्पा-चप्पा भूमि को रँगता रहा हूँ। क्यों बड़ी साहिबा, क्या वह सब हिंदू-राज्य की स्थापना के लिए……

बड़ी साहिबा—वह तो मछली को चारा डालना था।

शाहजी—इतना मँहगा चारा! भाइयों का खून!

अफ़ज़ल—तुम दुनिया को धोखा दे सकते हो, पर हमें नहीं। शिवाजी ने तोरण, कोंडाना, पुरंधर, तिकोना, लोहगढ़, राजमाची,

रायरी आदि दुर्ग कब्ज़े में कर लिये, क्या यह सब तुम्हारी बेजानकारी में। भोर दर्रे के पास शिवाजी ने शाही खज़ाने को लूट लिया, इस में भी क्या तुम्हारा हाथ नहीं है ?

शाहजी—उसमें मेरा क्या वश है ?

महमूद आदिल– तुम उसे समझाओ।

शाहजी—दादाजी कोंडदेव ने उसे समझाने के प्रयत्न में जान दे दी। पत्थर को पानी किया जा सकता है, पर जीजाबाई के बेटे का स्वभाव नहीं बदला जा सका। वर्षों से मैंने माँ-बेटे को नहीं देखा। मेरा उन पर ज़ोर ही क्या ?

बड़ी साहिबा—हिंदू औरत शौहर का कहना न मानेगी तो सूरज मग़रिब में निकलेगा। तुम जीजाबाई को लिखो कि वह शिवाजी को लेकर यहाँ आवे।

महमूद आदिल—मैं शिवाजी की बहादुरी की इज्ज़त करता हूँ। मैं उसे वही मनसब दूँगा, जो आपको दिया है।

शाहजी—आप उसे बचपन में देख ही चुके हैं। मैं उसे दरबार में कुछ दिनों तक लाता रहा। कितनी दफ़ा समझाया, पर उसने और दरबारियों की तरह ज़मीन तक झुककर आपको सलाम न किया। किसी के आगे झुकना तो उसने सीखा ही नहीं है। अब तो यह नामुमकिन ही है कि वह यहाँ आकर दरबार की मर्यादा का पालन कर सके।

बड़ी साहिबा—मैं दक्खिन में कोई ऐसा इनसान नहीं देखना चाहती, जो आदिलशाह के आगे न झुके। तुम या तो शिवाजी

को यहाँ आने को लिखो, या ज़िंदा दर-गोर होने को तैयार हो जाओ !

शाहजी—आपने शाहजी को अभी तक नहीं पहचाना, बड़ी साहिबा ! उसने लाखों को मरते देखा है और बीसियों हुकूमतों को बनते-बिगड़ते देखा है। वह मारना जानता है तो मरना भी जानता है।

अफ़ज़ल—तो तुम नहीं लिखोगे ?

शाहजी—नहीं।

अफ़ज़ल—अच्छी बात है (मज़दूरों से) चुनो ईंटें।

(मज़दूर और ईंटें रखते हैं)

बड़ी साहिबा—ठहरो, ठहरो, हमें शाहजी नहीं, शिवाजी चाहिए। इनकी मौत के बाद तो शिवाजी बे-लगाम ही हो जायगा। इन्हें अगर क़ैद में रखा जायगा तो बापकी जान बचाने के लिए हिंदू बेटा अपनी कुर्बानी देने में नहीं हिचकेगा। वह कभी ख़ुद दरबार में हाज़िर होगा।

महमूद आदिल—बेशक़ ! अफ़ज़लखाँ, तुम शाहजी को काल-कोठरी में बंद कराओ !

(शाहजी की ईंटें गिराई जाती हैं, उनके हाथ मज़बूती से बाँधे जाते हैं। शाहजी को लेकर अफ़ज़ल का एक ओर तथा शेष लोगों का दूसरी ओर प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

———

चौथा दृश्य

[राजगढ़ में शिवाजी और मोरोपंत पिंगले परामर्श कर रहे हैं]

मोरोपंत पिंगले—बीजापुर की पठान-सेना के ७०० पद-च्युत सिपाही आपकी सेवा में नौकरी करने आए हैं। उनकी किस्मत का फैसला हो जाना चाहिए !

शिवाजी—मोरोपंत, आप तलवार के धनी तो हैं ही, कलम के भी शूर हैं। बुद्धि और बल दोनों में सम्पन्न समझ कर ही मैंने आप को पेशवा बनाया है। आपकी राय में उनके सम्बन्ध में क्या करना उचित है ?

मोरोपंत—पठान शूर होते हैं, विश्वास-पात्र भी होते हैं, किन्तु उनकी धार्मिक कट्टरता उन्हें किस दिन कहाँ बहा ले जाय, इसका क्या ठिकाना !

शिवाजी—किन्तु यदि स्वराज्य केवल हिन्दुओं तक ही सीमित रह गया तो मेरी साधना अधूरी रह जायगी। मैं जो बीजापुर और दिल्ली की बादशाहत की जड़ उखाड़ डालना चाहता हूँ वह इसलिए नहीं कि वे मुसलिम राज्य हैं, बल्कि इसलिए कि वे आततायी हैं, एक-तन्त्र हैं, लोक-मत को कुचल कर चलने के आदि हैं।

मोरोपंत—तो आपकी राय में इन पठानों को अपनी सेना में भरती कर लेना चाहिए ?

शिवाजी—क्यों नहीं ? यदि हम केवल हिन्दुओं का संग्रह करेंगे तो स्वराज्य प्राप्त न होगा, सबको समान शान्ति और सुख देनेवाला शासन संस्थापित न हो सकेगा। जिसे स्वराज्य प्राप्त करना है उसे चाहिए कि वह सभी वर्णों और सभी जातियों के लोगों को अपने-अपने धर्म के अनुसार चलने की स्वतंत्रता दे कर उनका संग्रह करे। आप जानते हैं, मैंने कभी किसी मसजिद की एक ईंट को भी आँच नहीं आने दी। जहाँ मुझे कुरान मिला है मैंने उसे आदर के साथ किसी मौलवी के पास पहुँचा दिया है। सर्व-साधारण की स्वतंत्रता की साधना करने वाले के हृदय में धार्मिक असहिष्णुता क्यों ?

मोरोपंत—वास्तव में आप ठीक कहते हैं। आप के विचारों की उदारता हमारी स्वराज्य-साधना का सर्वोच्च शिखर है।

(आवाजो सोनदेव कल्याण के शासक मौलाना अहमद एवं उसकी सुन्दरी पुत्र-वधू को बंदी अवस्था में लेकर आता है। सिपाही कैदियों को रस्सी से बाँधे हुए हैं।)

सोनदेव—(झुक कर नमस्कार करके) महाराज, आपके दास सोनदेव ने कल्याण प्रदेश को जीत लिया है। ये वहाँ के शासक मौलाना अहमद हैं और यह इनकी पुत्र-वधू। इन्हें आपकी सेवा में……

शिवाजी—मौलाना अहमद को कारागार में ले जाओ।

(सिपाही मौलाना अहमद को ले जाते हैं)

सोनदेव—और महाराज, यह पृथ्वी का चाँद, इसे आप अपनी सेवा में……

शिवाजी—यह क्या कहते हो, सोनदेव! (कुछ सोच कर) अच्छा, इनका घूँघट खोल दो।

(सोनदेव युवती का घूँघट खोल देता है—युवती के रूप से सभी विस्मय-विमुग्ध हो जाते हैं)

शिवाजी—मैं नहीं जानता था कि इस संसार में इतना सौंदर्य हो सकता है!

सोनदेव—स्वामी, यह आप का ही……

युवती—(भयभीत-सी होकर कंपित स्वर में) मैं नहीं जानती थी कि शिवाजी के दरबार में……

शिवाजी—डरो मत, माँ! डरो मत। शिवाजी विलासी कुत्ता नहीं है। तुम्हें देखकर मेरे हृदय में केवल यह भाव उठ रहा है कि यदि तुम मेरी माँ होतीं, तो क्या विधाता ने मुझे सौंदर्य की दौलत देने में इतनी कंजूसी की होती? तुम्हारे रूप की चकाचौंध से मेरी आँखों ने नया प्रकाश पाया है। कितना भव्य, कितना दिव्य! यह सौंदर्य तो पूजने की वस्तु है, माँ! सोनदेव मैं तुमसे बहुत असंतुष्ट हूँ। तुम हृदय में इतना कलुष लेकर एक कुल-वधू को मेरे पास लाए हो! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि……

(जीजाबाई तथा सईबाई का प्रवेश)

जीजा—ठहरो बेटा, उसे दंड न दो। इसमें उसका नहीं, तुम्हारी माँ का अपराध है। मैंने ही इसे भेजकर तुम्हारी परीक्षा ली थी। जो स्वराज्य-साधना का नेतृत्व करता है, काँटों का ताज सिर पर रखता है, वह यदि पर-नारी का मान करना नहीं जानता,

तो उससे अधम कौन हो सकता है ? मैंने तुम्हारे बाहु-बल को खूब परख कर देखा था। हृदय के शील की कठिन परीक्षा और लेनी थी, वह भी आज ले ली। अब मुझे विश्वास है, संसार की कोई शक्ति तुम्हें पथ-च्युत न कर सकेगी। जो ऐसे सौन्दर्य को ठुकरा सकता है—वह स्वर्ग को भी लात मार सकता है। धन्य हो बेटा ! आज मेरे आनंद की सीमा नहीं है।

शिवाजी—मोरोपंतजी, इस युवती को उत्तम वस्त्र, आभूषण देकर अत्यंत आदरपूर्वक बिदा करो। इसको यहाँ आने में जो आत्म-ग्लानि हुई, जो कष्ट उठाना पड़ा, उसके प्रतिफलस्वरूप इसके श्वसुर को भी बंधन-मुक्त कर दो।

(युवती को लेकर मोरोपंत व सोनदेव का प्रस्थान—
गोपीनाथ का घबराए हुए प्रवेश)

गोपीनाथ—माताजी ! (कंठावरोध)

जीजा—क्या बात है, गोपीनाथ !

गोपीनाथ—अनर्थ हो गया, माँ जिस बात की आशंका थी...

(रुक जाता)

शिवाजी—स्पष्ट कहो गोपीनाथ !.........

गोपीनाथ—जो बीभत्स-कांड मैंने आँखों से देखा उसके बाद भी मैं बिना दो चार को मौत के घाट उतारे ज़िंदा लौट आया, यह कितनी शर्म की बात है ! पर क्या किया जाय ! गुप्तचर का कर्तव्य बड़ा कठिन है !

जीजा—कुछ कहो भी गोपीनाथ! ऐसी कोई विपत्ति नहीं जो शिवा की माँ को विचलित कर सके।

गोपीनाथ—आदिलशाह ने शाहजी को गिरफ्तार कर लिया है।

शिवाजी—उस भेड़िए को सिंह पर हाथ उठाने का साहस कैसे हुआ?

गोपीनाथ—हमारे दुर्भाग्य से। भारत में जयचंद न पैदा होते तो आज इसका इतिहास ही कुछ और होता। हम शत्रु का ऐश्वर्य सहन कर सकते हैं, किंतु बंधु की उन्नति नहीं। रात को सोते में बाजीराव घोरपड़े, और जसवंत राव ने उन पर आक्रमण करके उन्हें कैद कर लिया।

जीजा—मेरे शिवा के बाहुओं में उनके बंधन काटने का बल है।

गोपीनाथ—पहले उन दुष्टों ने उन्हें जीते जी दीवार में चुनने का आयोजन किया, फिर न जाने क्या सोचकर उन्हें कुछ दिन और दुनिया में रहने की आज्ञा मिल गई, किंतु मुक्त मनुष्य की भाँति नहीं, काल-कोठरी में बंदी के रूप में।

शिवाजी—माँ, तुम्हारे दुःखों का प्याला भर गया है। मैं कपूत उन्हें कम न करके बढ़ा रहा हूँ। जो बात मेरे जीवन में कभी न हुई, पिताजी के लाख कहने पर भी न हुई, वह अब होगी। मैं आदिलशाह के पैरों पर गिर कर पिताजी को बंधन-मुक्त कराऊँगा।

गोपीनाथ—इससे तो शत्रु के मन की मुराद पूरी होगी। वहाँ

अफ़ज़लखाँ और बड़ी साहिबा ने षड्यंत्र रचा है कि शिवाजी आवें तो ज़िंदा वापस न लौटने पावें।

शिवाजी—कोई चिंता नहीं। पुत्र का जीवन माता के सुहाग से बड़ा नहीं है।

जीजा—देखो बेटा, यह ठीक है कि हिंदू स्त्री के लिए पति ही लोक है और पति ही परलोक, किंतु मनुष्य का सब से उच्च कर्तव्य स्वदेश-धर्म का पालन है। मैं अपनी हानि सह सकती हूँ, स्वदेश की नहीं। तुम स्वदेश की सम्पत्ति हो, जनता के धन हो, तुम्हारा जीवन व्यक्ति के सुख के लिए अर्पित नहीं हो सकता।

गोपीनाथ—किंतु, माताजी आप यह आघात कैसे सहन करेंगी?

जीजा—आघात! मेरा हृदय उसी धातु से बना है, जिससे सह्याद्रि की चट्टानें। यदि उन्हें प्राण-दंड मिला तो जीजाबाई पति-धर्म का पालन करेगी। उन्होंने जो सौभाग्य वर्षों से मुझे नहीं दिया वह मैं एक क्षण में पा जाऊँगी। मैं उन के साथ चिता-सेज पर सोऊँगी—और मेरा शिवा निश्चिंत होकर राष्ट्र-धर्म का पालन करेगा।

सईबाई—कोई ऐसा भी मार्ग हो सकता है, जिससे माँ का, पत्नी का, पुत्र का, और देश के सैनिक का—सभी का—धर्म-पालन हो सके।

शिवाजी—वह क्या?

सईबाई—मैं मूर्ख औरत हूँ, किंतु शिवाजी की पत्नी हूँ। थोड़ी राजनीति मैं भी समझती हूँ। आदिलशाह को शाहजी के प्राण नहीं, शिवाजी का सिर चाहिए।

शिवाजी—हाँ, यह तो ठीक है!

सईबाई—शाहजी को प्राण-दंड देने मे शिवाजी की गर्दन और भी दृढ़ हो जायगी। शाहजी को कैद में रखने से उसे आशा होगी कि तुम उन्हें छुड़ाने जाओगे—आत्म-समर्पण कर दोगे।

जीजा—तुम ठीक कहती हो। पर शिवा को कभी ऐसा न करने दिया जायगा। वह केवल शाहजी या जीजाबाई का बेटा नहीं है—वह कुमारी अंतरीप से नागा पर्वत पर्यन्त फैले हुए विराट देश के दीन-दुखी परतंत्र हृदयों का आधार है—करोड़ों माताओं का पुत्र है। उसे उन सब के सुख-सुहाग की रक्षा करनी है।

सईबाई—वह रक्षा तो होगी ही। आप सब जानते हैं कि बीजापुर से मुग़लों का ३६ का संबंध है। अगर इस संबंध में मुग़लों से हस्तक्षेप करने को कहा जाय तो वे शाहजी को अवश्य बंधन-मुक्त करावेंगे। अंधा क्या चाहे; दो आँखें! बीजापुर के विरुद्ध मराठों का सहयोग! मुग़लों के लिए इससे बढ़कर सुयोग और क्या हो सकता है? वे अवश्य इस पाश में बँध जाएँगे।

जीजा—धन्य हो सईबाई! आज तुमने महाराष्ट्र की रक्षा कर ली!

शिवाजी—तुमने डूबते को सहारा दिया है। ऐसी राज-नीति-निपुण पत्नी पाना मैं सौभाग्य समझता हूँ। (गोपीनाथ से) गोपीनाथ! तुम पत्र लेकर अभी मुग़ल-दरबार में जाओ। चलो, मैं अभी लिखता हूँ।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[औरंगाबाद में मुग़लों का राज-महल। औरंगज़ेब और मीर जुमला बातें कर रहे हैं]

औरंगज़ेब—सल्तनत की ख़्वाहिश भी एक बला है! न रात को नींद न दिन को चैन! अफ़ग़ानिस्तान से बंगाल और काश्मीर से अहमदनगर तक मुग़लों का झंडा फहरा रहा है, फिर भी दिल इस क़दर बेचैन रहता है, गोया हम रास्ते के भिखारी हैं। विजयनगर की सल्तनत को बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगर की बादशाहतों ने मिलकर मिटा दिया, हम अहमदनगर को हज़म कर चुके और अब बीजापुर को भी खतम करने पर तुले हैं। हार और जीत का यह सिलसिला योंही चलता आया है और योंही चलता रहेगा।

मीर जुमला—हमारी तो हर जगह फ़तह ही हो रही है। आदिलशाही भी अब सिर्फ दो दिन की मेहमान है।

औरगजेब—सच कहते हो मीर जुमला, बेशक यह सुबह का चिराग़ है, हवा के एक झोंके से बुझ जाएगा। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि बीजापुर की बरबादी के पीछे एक आँधी छिपी हुई है—एक तूफ़ान इंतज़ार कर रहा है।

मीर जुमला—तूफ़ान !

औरंगज़ेब—हाँ तूफ़ान। वह बादलों की एक छोटी-सी टुकड़ी है। मुग़ल अपने बड़प्पन के घमंड में उसकी तरफ़ नहीं देखते। वह किस दिन सारे आसमान में छाकर अँधेरा कर देगी, ज़मीन पर पानी का समुन्दर बहा देगी, इसे कोई नहीं जानता। हम घमंड की तारीकी में ख़ुदी का ख्वाब देख रहे हैं। एक दिन आँख खुलेगी, तो देखेंगे कि मुग़लों की सल्तनत इस दुनियाँ के नक्शे से नेस्त-नाबूद हो गई है।

मीर जुमला—शाहज़ादा औरंगज़ेब के मुँह से मैं यह क्या सुन रहा हूँ।

औरंगजेब—मैं सच कह रहा हूँ, मीर साहब ! मेरा इशारा शिवाजी की तरफ़ है। हम सोचते हैं, वह एक डाकू है—लुटेरा है। पर मैं देख रहा हूँ, महसूस करता हूँ कि वह आज सारे हिंदुस्तान का बेताज बादशाह है। हम लोग रुपया देकर फौज़ें खड़ी करते हैं, वह आज़ादी का नाम लेकर बात की बात में बयाबान जंगल में लश्कर के लश्कर जमा कर लेता है। दक्खिन की ज़मीन का ज़र्रा-ज़र्रा आज उसका मददगार है।

मीरा जुमला—जिस मुग़ल सल्तनत की जड़ सदियों से मज़

बूत होती आरही है, हवा का एक झोंका, आग की एक चिनगारी उसका क्या बिगाड़ सकती है ?

औरंगज़ेब—मैंने जयसिंह की बहादुरी देखी है, जसवंतसिंह का हौसला देखा है, लेकिन शिवाजी की तो बात ही कुछ और है। वह बहादुर भी है और चालाक भी ! उसके मनसूबे बिजली की रफ्तार से भी तेज़ चलते हैं। अब्बाजान को यह यक़ीन दिलाकर कि वह मुगलों की नौकरी मंजूर करेगा, उसने बीजापुर की क़ैद से शाहजी की रिहाई करा ली, और फिर अँगूठा दिखा दिया। जब मैं बीजापुर की मदद को आया, तो मुझ से भी वादा किया कि वह मेरी मदद करेगा। फिर मदद करना तो दूर रहा, मुगल हद के जुनार और अहमदनगर पर चढ़ाई करके वहाँ से बेहद दौलत और हाथी-घोड़े लूट ले गया।

मीर—इस पर उसकी जुर्रत तो देखो, अब फिर अपने क़ासिद रघुनाथ पंत को भेजा है।

औरंगज़ेब—उसे बुलाओ !

(मीर जुमला का प्रस्थान)

औरंगज़ेब—अगर मैं बादशाह होता तो सब से पहले शिवाजी की खबर लेता ! वाह रे हौसले ! बार-बार धोखा देकर भी शिवाजी समझता है कि मैं उसका यक़ीन करूँगा। अच्छी बात है, मैं फिर भी यही ज़ाहिर करूँगा कि मैं उसका यक़ीन करता हूँ।

(रघुनाथपंत का प्रवेश)

रघुनाथ—सलाम शाहज़ादा साहब !

औरंगजेब—आइए !

(बैठने को स्थान सूचित करता है)

रघुनाथ—शिवाजी ने यह पत्र आपकी सेवा में भेजा है।

(पत्र निकाल कर देते हैं)

औरंगज़ेब—(पत्र पढ़कर कुछ गंभीरभाव से) देखो, राघोजी, मेरी ज़िन्दगी लड़ाई के मैदान में गुज़री है। मैं तलवार के धनी दुश्मन को दोस्त बनाना फख्र की बात समझता हूँ। शिवाजी अगर दोस्त बन सकें तो क्या बात है। लेकिन उन पर यक़ीन करना ज़हरीले साँप पर यक़ीन करना है। काठ की हाँडी बार-बार नहीं चढ़ा करती।

रघुनाथ—एक बार आप उनकी इच्छा पूरी कर दें, उन पर पूरा विश्वास करें, तो आप देखेंगे कि शाहजी ने बीजापुर और अहमदनगर के लिए जो कुर्बानियाँ की हैं, उनसे ज्यादा शिवाजी मुग़लशाही के लिए करेंगे।

औरंगजेब—वे चाहते हैं कि बीजापुर से जो मुल्क उन्होंने जीते हैं वे उनके पास रहने दिए जाँय, बीजापुर के कोंकण प्रदेश को कब्ज़े में लेने की इज़ाज़त दे दी जाय। यहाँ तक मैं मान सकता हूँ, लेकिन जुनार और अहमदनगर की सरदेशमुखी……नहीं-नहीं ! अच्छा राघोजी, मैं इसका जवाब दो-एक दिन में दूँगा।

रघुनाथ—जैसी आपकी इच्छा।

(रघुनाथ पंत का प्रस्थान तथा मीर जुमला का प्रवेश)

मीर जुमला—देहली का क़ासिद यह ख़त लेकर आया है।

(मीर जुमला औरंगज़ेब को पत्र देता है)

औरंगज़ेब—(पत्र पढ़कर बहुत गंभीर हो जाता है) मीर साहब, ज़रा रघुनाथ पंत को फिर बुलाइए।

(मीर जुमला का प्रस्थान)

औरंगज़ेब—(अकेले) रोशनआरा का ख़त है। बादशाह बीमार हैं। मुझे दक्खिन में भेज दारा को बादशाहत का निज़ाम सौंपा है। काफ़िर दारा! वह बादशाह होगा! नहीं वह बादशाहत करने को नहीं, उपनिषद् पढ़ने को पैदा हुआ है। मेरे लिए दक्खिन की फ़तह से बड़ा काम दिल्ली के तख्त पर कब्ज़ा करना है। मुझे फ़ौरन देहली जाना होगा। फ़िलहाल शिवाजी को भी चरका देना पड़ेगा। उसे दोस्त बनाकर बीजापुर को ख़त्म करने का काम सौंप देना होगा।

(रघुनाथ पंत का प्रवेश)

औरंगज़ेब—मैंने सोच लिया है। मैं शिवाजी को मुग़लों की दक्खिनी हद की हिफ़ाज़त का काम सौंपता हूँ। बीजापुर के ख़िलाफ़ जो भी कार्रवाई वे करेंगे, उसमें मुग़ल उनका साथ देंगे। रह गई सरदेशमुखी की बात, सो उसका जवाब मैं देहली से दूँगा। इस बीच शिवाजी को वफ़ादारी का सबूत देना पड़ेगा।

रघुनाथ—बहुत अच्छा! मुझे यकीन है कि शिवाजी आपका पैग़ाम मंजूर करेंगे।

(प्रस्थान)

औरंगज़ेब—हः हः हः, अब मज़ा आएगा। अब भाइयों के खून

से दिल्ली का लाल क़िला लाल लाल हो......(सँभल कर) ठीक है, मुझे फौरन दिल्ली की तरफ़ कूच करना चाहिए।

(प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

छठा दृश्य

[औरंगवाड़ी के वन-खंड में समर्थ रामदास हाथ में कागज़ कलम लिये कविता लिख रहे हैं]

रामदास—(ध्यान भंग होने पर) देखें यह गीत कैसा उतरा है !

(गाकर पढ़ते हैं)

माँग रही है माँ बलिदान,
जागो जागो सोने वालो,
धन, गौरव, यश खोने वालो,
अबलाओं से रोने वालो,
प्राप्त करो गत गौरव, मान
माँग रही है माँ बलिदान !
कोटि-कोटि हाथों में चमके,
असि, चपला सी चमचम दमके,
तुम प्रलयकंर गण हो यम के,
करो रक्त-गंगा में स्नान !
माँग रही है माँ बलिदान !

फूल चढ़ाने को मत लाओ,
पूजा करने भी मत आओ,
कहती आज भवानी, जाओ,
रण में दो जीवन का दान!
माँग रही है माँ बलिदान!
जन्म-भूमि के हृदय-दुलारो,
अरि को भैरव बन ललकारो,
युग की माँग यही है प्यारो!
यही आज जप, तप, व्रत, ध्यान,
माँग रही है माँ बलिदान!

हाँ ठीक तो है।

(कविता का काग़ज़ मोड़ कर रख लेते हैं, एक दूसरा कागज पढ़ते हैं) यह शिवाजी का पत्र है, लिखते हैं—"आपके उपदेशों ने, भजनों ने, और कीर्तनों ने जनता के हृदय में वर्तमान परिस्थिति के प्रति विद्रोह की आग जला दी है। जिस महापुरुष ने मेरी साधना का मार्ग सीधा कर दिया है उनके दर्शनों से मैं कब तक वंचित रहूँगा। आप प्रेरणा हैं, मैं गति; आप बारूद हैं, मैं आग; आप ज्वालामुखी हैं, मैं विस्फोट। हमारा सहयोग आवश्यक है।" शिवाजी की गति-विधि का निरीक्षण करते कई वर्ष हो गए। इसके पर्याप्त प्रमाण मिल चुके हैं कि उसने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं, राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए तलवार उठाई है। आज वह आ रहा है, उससे भेंट करनी ही होगी।

(एक ओर से स्वामी रामदास का प्रस्थान, दूसरी ओर से शिवाज़ी और अकाबाई का प्रवेश)

शिवाजी—देखो न अकाबाई ! स्वामी रामदासजी कितने निष्ठुर हैं। मैं उनसे दीक्षा लेना चाहता हूँ, और वे दर्शन देने से भी कतराते हैं। बहन, मैं मनुष्य हूँ, दुर्बल हृदय हूँ। दुर्बल क्षणों में महात्माओं का उपदेश ही अंतर्प्रेरणा बन कर नए उत्साह का ज्वार उठा सकता है। अभी और कितना चलना है, बहन !

अकाबाई—अभी तो स्वामी जी यहीं थे। उन्हें तो मानों नारद के पाँव मिले हैं। मैंने तो तुमसे कहा था—पहले भोजन कर लो, पीछे स्वामीजी को खोज लेंगे।

शिवाजी—नहीं बहन ! मैं दृढ़ निश्चय करके आया हूँ कि बिना स्वामी जी के दर्शन पाए अन्न-जल का एक कण भी ग्रहण न करूँगा।

(पीछे से समर्थ रामदास का प्रवेश)

रामदास—जिस वीर पुरुष ने मेरे स्वप्नों को सत्य किया है, उसके लिए मैंने आँखें बिछा रखी हैं।

(शिवाजी मुड़ कर देखते हैं और रामदास स्वामी के चरण छूते हैं)

रामदास—(शिवाजी को उठाकर) यशस्वी हो शिवा ! तुम्हारा नाम भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में सूर्य के समान चमके।

शिवाजी—महाराज, मैं अकिंचन प्राणी हूँ, एक अपरिचित कंटकाकीर्ण पथ पर चल पड़ा हूँ, जिस पर अमावस्या की रात्रि

के समान अंधकार है। आप समर्थ हैं, आप मेरे हाथों में अक्षय दीपक दीजिए।

रामदास—बैठो शिवाजी ! यह सब तुम्हारे हृदय की महत्ता है।

(सब बैठते हैं)

रामदास—जिस वीर हृदय, जिन बलशाली भुजाओं, विवेक-पूर्ण आँखों और दुर्दमनीय साहस की मुझे एक पुरुष में आवश्यकता थी, उसकी प्राप्ति मुझे तुम में हो गई।

शिवाजी—मेरे तुच्छ कार्य आप ही की तपस्या के फल हैं।

रामदास—मैं तो केवल एक अकिंचन संन्यासी और वेदना-व्यथित कवि हूँ। मैंने बचपन से आज तक भ्रमण करने में ही अपना जीवन व्यतीत किया है। इस भ्रमण में मैंने जन्मभूमि का जो रूप देखा, उससे मेरा हृदय टूक-टूक हो गया मैंने देखा धन-सम्पत्ति सब समाप्त हो गई है, सब प्रदेश सुनसान और निस्तब्ध हैं ! जनता के पास खाने के लिए अन्न नहीं, पहनने-ओढ़ने को कपड़े नहीं, घर बनाने को उपादान नहीं। यह सब देख कर मेरे हृदय में हाहाकार गरज उठा। उसी गर्जन को मैं अपनी कविताओं में निश्शेष कर देने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

शिवाजी—गुरुदेव आप जैसा महान् हृदय मैं कहाँ से पाता, किन्तु एक छोटी सी टीस रात-दिन मेरे हृदय में भी कसकती रहती है। मुझे प्रति क्षण यह चिन्ता रहती है कि यह देश कैसे स्वतन्त्र हो !

रामदास—तुम्हारी चिन्ता सार्थक है। स्वतन्त्रता ही राष्ट्र की

सब व्याधियों की एक मात्र औषध है। स्वराज्य में भूखों मरें, दाने दाने को मोहताज रहें, हमें पेड़ों की छाया में ही घर बसाना पड़े, फिर भी हमें सन्तोष रहेगा कि हम स्वतन्त्र जातियों के सम्मुख गर्दन ऊँची करके खड़े हो सकते हैं। सोचो तो भैया! स्वराज्य न होने से हमारा पद-पद पर अपमान हो रहा है। हम मनुष्य नहीं समझे जाते। वीरवर! आज देश के आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए तुम जैसे वीर पुरुष की अत्यन्त आवश्यकता थी।

शिवाजी—गुरुदेव, मैं अधिक क्या कहूँ, यदि देश ने साथ दिया तो सम्भव है आपकी इच्छा पूरी कर सकूँ।

रामदास—दुःख तो इस बात का है कि जो समाज के पथ-प्रदर्शक थे, गुरु थे उन्होंने उलटी गंगा बहाई। महात्मा, त्यागी और लोक-शिक्षक, मोक्ष के स्वप्न में वास्तविकता को भूल गये। स्वर्ग की साधना में भौतिक विश्व को गँवा बैठे। उन्हें न माया ही मिली और न राम! ये वेदान्ती लोग भूखों मरते हुए देश-वासियों से कहते हैं—तुम्हारे सामने माता, स्त्री, पुत्र और कन्याएँ भूख से मरती हैं तो मरने दो; तुम विचलित मत हो। शान्त और समाहित हो कर हरि-नाम स्मरण करो। अनाहार के कारण आर्तनाद करते हुए पुत्र-कलत्रों की क्रंदन-ध्वनि को मृदंग और करताल की ध्वनि में विलीन कर दो। उपवास से भयभीत मत हो, यहाँ उपवास करोगे तो परलोक में इन्द्रपुरी में स्थान मिलेगा। पहनने के लिए पारिजात-माला मिलेगी और भोजन की जगह अमृत। इस प्रकार के असंगत उपदेशों के अजीर्ण से लोग कर्तव्य-विमुख हो गये।

शिवाजी—इस कठिन अवसर पर आपने देश को कर्म-योग का पाठ पढ़ाकर निस्संदेह बड़ा उपकार किया।

रामदास—मैं कहता हूँ माया निरा प्रपंच नहीं है। जनता की सांसारिक उन्नति से, वंचितों और पीड़ितों की सेवा से, लोक-कल्याण होता है। लोक-कल्याण असीम परोपकार है और परोपकार से लोक और परलोक दोनों में परम-पद-प्राप्ति निश्चित है। केवल करताल और मृदंग-ध्वनि से भूखे राष्ट्र का पेट नहीं भरा करता, केवल तुलसी की माला से शांति प्राप्त नहीं हो सकती। देश की आर्थिक स्थिति सुधारना सर्व प्रथम कर्तव्य है और वह तब तक नहीं सुधर सकती जब तक देश पराधीन है, परतंत्र है।

शिवाजी—आप जैसा पथ-प्रदर्शक न मिलता, तो महाराष्ट्र भी और प्रान्तों की तरह बेशरमी की नींद ले रहा होता।

अकाबाई—श्री समर्थ गुरुदेव ने कितना श्रम किया है, यह इनके मठों का संगठन बता रहा है। आज लगभग एक हज़ार कर्म-मंदिर स्वामी जी के अथक परिश्रम का प्रमाण दे रहे हैं। आज राष्ट्र में जो राजनीतिक जाग्रति नज़र आ रही है, उसका अधिकांश श्रेय उन्हीं को है।

रामदास—अकाबाई को बोलते देखकर एक बात और कहनी पड़ रही है। अपनी स्वराज्य-साधना से महिलाओं को पृथक् न रखना। समाज के आधे अंश को पंगु बनाओगे तो तुम्हारी सफलता स्थायी न होगी! मैं वह दिन देखना चाहता हूँ, जिस दिन ये भी कराला काली का रूप धारण करके स्वतंत्रता-संग्राम में

सहायक हों ! मैंने अक्काबाई और वेनाबाई को स्त्रियों में राष्ट्र-धर्म की जाग्रति उत्पन्न करने का कार्य सौंपा है। नारी-शक्ति समाज की प्रधान शक्ति है । जब तक उन्हें अपने अंतर्बल का ज्ञान न हो, अपनी शक्ति पर विश्वास न हो, तब तक कोई देश स्वतंत्र नहीं हो सकता। राजपूताने की उन वीर रमणियों को स्मरण करो, जो अपने हाथ से पति-पुत्र को युद्ध में भेजकर अंत:पुर में चिता प्रज्वलित कर हँसते-हसते भस्म हो जाती थीं। वे आज संसार के इतिहास में अमर हैं और उनके कारण सारी राजपूत जाति अमर है। दूर क्यों जाते हो, तुम्हारी माँ जीजाबाई और पत्नी सईबाई को ही देखो, वे तुम्हें तुम्हारे महाव्रत-साधन में कितनी सहायता दे रही हैं ! भगवान् करें, महाराष्ट्र की अंतरालवर्तिनी आद्या शक्ति प्राचीन गौरव-महिमा की रक्षा के लिए जाग पड़े।

अक्काबाई—गुरुदेव ! क्या आज जंगल ही में रात बिताना चाहते हैं ? चलिए न मठ में चला जाय।

रामदास—अतिथि को मठ में विश्राम देने की बात तो मैं भूल ही गया था। अक्काबाई, आज मैंने एक गीत लिखा है; उसे एक बार गाकर तो सुनाओ; फिर मठ में चलें ! (कागज़ देते हैं)

अक्काबाई—(गाती है)

माँग रही है माँ बलिदान,

जागो जागो सोने वालो,
धन, गौरव, यश खोने वालो,
अबलाओं से रोने वालो,

प्राप्त करो गत गौरव, मान,
माँग रही है माँ बलिदान!
कोटि-कोटि हाथों में चमके,
असि चपला सी चमचम दमके,
तुम प्रलयंकर गण हो यम के,
करो रक्त-गंगा में स्नान!
माँग रही है माँ बलिदान!
फूल चढ़ाने को मत लाओ,
पूजा करने भी मत आओ,
कहती आज भवानी, जाओ,
रण में दो जीवन का दान!
माँग रही है माँ बलिदान!
जन्म-भूमि के हृदय-दुलारो,
अरि को भैरव बन ललकारो,
युग की माँग यही है प्यारो!
यही आज जप, तप, व्रत, ध्यान,
माँग रही है माँ बलिदान!

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

[राजगढ़ में शिवाजी का मंत्रणा-गृह। कमरे में कोई नहीं है।

समय—संध्या काल।]

(धीरे-धीरे रुग्णा सईबाई का प्रवेश)

सईबाई—आसमान में उड़ते हुए बादलों के टुकड़े लाल हो गये हैं। सूर्य अस्ताचल को चला गया है। उधर बगीचे में सूर्य-मुखी ने सिर झुका लिया है। पक्षी कल-रव करते हुए नीडों की ओर पंख फैलाये जा रहे हैं। क्या मुझे भी जाना होगा।

(यमुना का प्रवेश)

यमुना—बीमारी में भी मंत्रणा-गृह न छूटा! यहाँ अकेले में किसका मंत्रित्व करने आई हो, रानी! शिवाजी की पत्नी हो न! तुम्हारे भी काम विचित्र हैं। यहाँ तो कुएँ में ही भाँग पड़ी है—सभी विचित्र हैं।

सईबाई—घर का दीया जला दिया न?

यमुना—हाँ!

सईबाई—जब दीपक जलने का वक्त आया है—तब मेरे जीवन का दीपक बुझने वाला है।

यमुना—यह क्या कहती हो, बहन!

सईबाई—हवा का झोंका रास्ते के बीच से दिशा-परिवर्तन नहीं कर सकता। इस दीपक को बुझाने को वह चल पड़ा है।

यमुना—यह क्या कहती हो रानी, ईश्वर करे तुम युग-युग तक सुहाग का सुख लूटो।

सईबाई—अब सान्त्वना व्यर्थ है, बहन ! रुग्णा स्त्री सैनिक पति के लिए भार हो जाती है। अब मैं उनके काम में अपने अस्तित्व को बाधक न बनने दूँगी। अच्छा रहने दो ये बातें, तुम कोई गीत सुनाओ।

यमुना—भीतर चलो।

सईबाई—अब पक्षी घोंसले में न जायगा। तुम अपना गीत शुरू करो बहन !

यमुना—(गाती है)

आज मिलन की निशि है प्यारी।

माला गूँथो साज-सजाओ,
रोली-कुंकुम लेकर आओ,
सखियाँ, हिल-मिल मंगल गाओ,

आँखों में छा रही खुमारी,
आज मिलन की निशि है प्यारी।

आसमान में शशि मुसकाता,
प्राणों में तूफान उठाता,
उधर मलय का झोंका आता।

आज बनी है दुनिया न्यारी,
आज मिलन की निशि है प्यारी।

सईबाई—आज मिलन की निशि है प्यारी······

(इसी पंक्ति को गुनगुनाती हुई मूर्छित हो जाती है)

यमुना—(सँभालती हुई)—रानी, रानी ! यह क्या हुआ ?

अरे मैंने तो पहले ही कहा था ! इस हवा में, ऐसी बीमारी में बाहर आने की क्या ज़रूरत थी ? दासी ! दासी ! ...(दो दासियों का प्रवेश) इन्हें कमरे में ले चलो !

(सब मिलकर सईबाई को उठा ले जाती हैं । थोड़ी देर में शिवाजी, जीजाबाई और मोरोपंत पेशवा का प्रवेश)

शिवाजी—मोरोपंतजी परिस्थितियाँ जटिल हो रही हैं । इस समय हम चारों ओर से विपत्तियों से घिरे हुए हैं । मुग़लों की तलवार कच्चे धागे से बँधी सिर पर टँगी है । उधर अफ़ज़लखाँ ने मुझे जिंदा ही पकड़ ले जाने का बीड़ा उठाया है । जावली के मोरे वंश का प्रतावराव भी उसके साथ है ।

मोरोपंत—जावली देकर इस विपत्ति को अभी टाला जा सकता है ।

शिवाजी—जावली वापस ही देनी थी तो चन्द्रराव मोरे का खून बहाने से क्या लाभ था ? जावली पश्चिमी घाट के समस्त प्रदेश की कुंजी है । इसके हाथ में आ जाने से समस्त पहाड़ी प्रदेशों को अधिकार में करना सरल हो गया है । प्रतापगढ़ के बनवाने से हमारी सीमा सुरक्षित हो गई है । अब हम जावली को कैसे छोड़ सकते हैं ?

मोरोपंत—राजनीति तो परिस्थितियों का खेल है । इसमें ऐसे ज़हर के घूँट अनेक बार पीने पड़ते हैं ।

शिवाजी—तुम्हारी क्या सम्मति है, माँ !

जीजा—अफ़ज़ल तुम्हारे भाई संभाजी का हत्यारा है, तुम्हारे

पिता का जानी दुश्मन है। माँ का हृदय क्या चाहता है, क्या यह तुम्हें बताना पड़ेगा ? द्रौपदी ने कीचक से अपमानित होकर पांडवों से क्या याचना की थी और भीम ने उसका क्या उत्तर दिया था ? तुम सब जानते हो, शिवा ! भगवान् कृष्ण जब कौरवों से संधि करने चले थे, तब द्रौपदी ने केशों की जो कथा कही थी, वही आज मैं तुम से कहती हूँ।

शिवाजी—ठीक है माँ ! शिवाजी माँ की अंतर्ज्वाला को शांत करेगा। वह सारे संसार से युद्ध करके माँ के दुःखी हृदय को शांति देगा। संभाजी के हत्यारे का मस्तक लाकर माँ के चरणों पर चढ़ावेगा।

मोरोपंत—किंतु, सईबाई बीमार हैं, युद्ध छिड़ जाने पर उस भीषण अवस्था में उन्हें कहाँ रखा जायगा ?

जीजा—हाँ, यह एक बाधा है।

(सईबाई का बालक संभाजी को लिए हुए प्रवेश)

सईबाई—यह बाधा भी न रहेगी, माँजी ! (जीजाबाई के चरण छूती है)

जीजा—सदा सौभाग्यवती रहो, बेटी ! ऐसी हालत में यहाँ क्यों चली आईं, सईबाई ?

सईबाई—सदा के लिए जाने को। यह बुझते हुए दीपक का अंतिम आवेग है।

जीजा—बेटा शिवा, इसे समझाकर भीतर ले जाओ ! मोरोपंत जी, चलो हमें अभी परामर्श करना है।

(मोरोपंत और जीजाबाई का प्रस्थान)

शिवाजी—सईबाई !

सईबाई—मैंने आज शृंगार किया है, स्वामी ! देखो मैं कैसी मालूम होती हूँ।

शिवाजी—जैसा शिवाजी की पत्नी को होना चाहिए।

सईबाई—आप की साधना में मेरा अस्तित्व बाधक है न ? लीजिए, आज यह काँटा आपके रास्ते से अलग हो रहा है। प्राणों का संचित संबल समाप्त हो गया है। पक्षी अपने चिर-काल के नीड में लौट रहा है। बिदा दो स्वामी !

(पैरों पर गिर पड़ती है)

शिवाजी—यह क्या कहती हो, सईबाई !

सईबाई—देश को तुम्हारी आठों पहर आवश्यकता है, तुम्हारा एक क्षण भी सईबाई की चिंता में क्यों नष्ट हो ? मैं देश के प्रति बेईमानी नहीं कर सकती, राष्ट्र के धन को अपने मोह की सीमा में बाँध कर नहीं रख सकती। (हाँफती है) आज मैं बहुत बोल चुकी हूँ।.........इतना बोलने की ताकत मुझ में कहाँ से आई ! अब नहीं बोला जाता।

(शिवाजी गोद में सईबाई का मस्तक रख लेते हैं)

शिवाजी—तुम इतनी निराश क्यों होती हो ? शिवाजी में तुम्हारी और देश की एक साथ रक्षा करने की शक्ति है। वह दोनों की चिंता का भार उठा सकता है।

सईबाई—यह मै जानती हूँ; फिर भी जब विमान आगया है,

तो उसे रास्ते ही से लौटा देने का उपाय नहीं। (संभाजी का हाथ शिवाजी के हाथ में देकर) संभाजी का ध्यान रखना, यह बच्चा······

(आँखें बंद कर लेती है)

शिवाजी—(सईबाई का मस्तक जमीन पर रख कर) बस, सब समाप्त। सईबाई, तुम जैसी सहचरी पाने का किसे सौभाग्य मिल सकता है! तुम आज जा रही हो, यह सोच कर कि तुम्हारी बीमारी की चिन्ता में तुम्हारा पति देश को न भूल जाय। हाय! तुम समय से पहले ही चलीं। (आँखों में आँसू भर आते हैं) अच्छा! तुम वीर-बाला थीं, तुम मर कर भी मेरे प्राणों में स्फूर्ति भरती रहोगी। अब मेरे हृदय के लिए विश्राम का कोई नीड़ नहीं रहा। अब संसार शिवाजी का वह प्रलयंकर रूप देखेगा, जो उसने शिव का, तांडव नृत्य करते समय, देखा था।

(नेपथ्य में यमुना गा रही है; "आज मिलन की निशि है प्यारी")

[पटाक्षेप]

———

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[वाई के जंगल में अफ़ज़लखाँ का डेरा। प्रतापराव अकेला]

प्रतापराव—समय हो गया, पर अफ़ज़लखाँ अभी तक नहीं आया। उसे प्रतापराव की आवश्यकता ही क्या है? पर इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार को सहना ही पड़ेगा। शिवाजी से बदला लेने के लिए सब कुछ करना होगा। जावली का ऐतिहासिक मोरे वंश ऐसा महत्त्व-हीन नहीं, जिसका नाम अकस्मात् ही मिटाया जा सके। उसने तलवार के ज़ोर से राज्य पाया था। उसके ऐश्वर्य और वीरता के गीत आज भी महाराष्ट्र के घर-घर में गाए जाते हैं। कृष्णा और वर्णा से सींचा जाने वाला जावली प्रदेश सदा मोरे वंश ही के अधिकार में रहेगा।

(फ़क़ीर के वेश में गोपीनाथ का प्रवेश)

गोपीनाथ—(गाता है)

सोच ज़रा मन में इनसान,
धन दौलत है एक तमाशा,
फँसा न इनमें जान।
इनसानों को बना दिया इस,
दौलत ने हैवान

भाई भाई का कातिल है
यह है इसकी शान
आज बेकसों के लोहू से,
बनता लाल जहान।

प्रतापराव—तुम कौन ?

गोपीनाथ—एक फ़क़ीर। दुनिया को जगाने वाला !

प्रतापराव—तुम ज्योतिष भी जानते हो ?

गोपीनाथ—क्यों नहीं ? तुम्हारा हाल बताऊँ ? तुम्हारे राजा होने का ग्रह है।

प्रतापराव—सच !

गोपीनाथ—बिलकुल सच, सोलह आने सच। और बतलाऊँ ? तुम चंद्रराव मोरे के भाई हो जिसे शिवाजी ने धोखे से क़त्ल कर दिया है।

प्रतापराव—यह आपने सुन कर जान लिया होगा।

गोपीनाथ—सुन कर नहीं, मैं तीनों कालों और दशों दिशाओं की बात बता सकता हूँ। शिवाजी ने चंद्रराव से कहा था कि अपनी लड़की का ब्याह उसके साथ कर दे और बीजापुर के राज्य को मिटाने में उसकी मदद करे। क्यों ठीक है न ?

प्रतापराव—लेकिन हमने बीजापुर का नमक खाया था, उसके साथ दग़ा कैसे कर सकते थे ?

गोपीनाथ—बेशक, तुम्हारे भाई ने पुश्तैनी धर्म को निभाया;

और तुम भी निभा रहे हो। हाँ, तो तुम राजा बनना चाहते हो? जावली के चंद्रराव का पद तुम्हें मिलना चाहिए। क्यों न?

प्रतापराव—आपने मेरे मन की बात कही।

गोपीनाथ—तो तुम मेरे साथ आओ।

(प्रतापराव और गोपीनाथ का प्रस्थान। बड़ी साहिबा और अफ़ज़ल खाँ का प्रवेश)

बड़ी साहिबा—देखो अफ़ज़ल, मैं तुम्हें अपने बेटे से भी ज़्यादा चाहती हूँ। तुम ने शिवाजी को जिंदा पकड़ लाने की कसम भरे दरबार में खाई है, पर यह काम इतना आसान नहीं है, इसी लिए कुछ सलाह देने मुझे यहाँ आना पड़ा।

अफ़ज़ल—आसान नहीं तो क्या है! मैंने मुग़लों के भी दाँत खट्टे कर दिए, यह पहाड़ी चूहा तो चीज़ ही क्या है? क्या आप नहीं जानतीं कि मैंने इन दिनों मराठों के गाँव के गाँव जला कर ख़ाक कर दिए—तुलजापुर का मंदिर धूल में मिला दिया। शिवाजी की बिसात ही क्या है कि मुकाबले पर आवे। वह तो प्रतापगढ़ में दुबका बैठा है।

बड़ी साहिबा—यह ख़ामख़याली है। वह हर तरह तुमसे ज़ोरदार है। उसके पास इस वक्त ६०००० फ़ौज़ है और तुम्हारे पास सिर्फ १२००० सवार हैं। इसलिए होशियारी से काम लो। मेरा ख़याल है कि तुम शिवाजी के पास सुलह का पैग़ाम भेजकर उसे अपने डेरे में बुलाओ और उसी वक्त कैद कर लो।

अफ़ज़ल खाँ—वाह, बड़ी साहिबा ! आपका और मेरा दिमाग़ बिलकुल एक-सा चलता है। मैंने भी दिल में यही सोचा है।

(फ़ज़ल मोहम्मद का प्रवेश)

फ़ज़ल—आदाब बड़ी साहिबा ! आदाब अब्बा। वह पिंजरा तैयार है।

बड़ी साहिबा—पिंजरा कैसा ?

अफ़ज़ल—उसी पहाड़ी चूहे को बंद करने के लिए।

(कृष्णाजी भास्कर का प्रवेश)

अफ़ज़ल—क्यों बड़ी साहिबा ! अब आपको मालूम हुआ कि अफ़ज़ल सिर्फ तलवार ही नहीं चला जानता, वह दिमाग़ से भी काम ले सकता है। कहिए कृष्णाजी, शिवाजी ने मुलाकात करना मंज़ूर किया।

कृष्णाजी—जी हाँ, लेकिन आपके डेरे में नहीं; प्रतापगढ़ की तलहटी में। उनकी शर्त है कि दोनों सशस्त्र आवेंगे, खाँ साहब साथ में दो सेवकों से अधिक न लावेंगे, ऐसा ही शिवाजी भी करेंगे। दोनों के दस-दस सेवक एक-एक बाण की दूरी पर खड़े रहेंगे।

अफ़ज़ल—मुझे मंज़ूर है।

बड़ी साहिबा—तुम दिमाग़ से काम नहीं ले रहे।

अफ़ज़ल—मैं एक बार उस शैतान को सामने पा भर जाऊँ, फिर तो उसका सर भुट्टे की तरह उड़ा दूँगा। भले ही फिर मुझे भी दुनिया से कूच करना पड़े। (कृष्णाजी से) कृष्णाजी ! जाओ, चोबदार से कहना—मेरी बेग़मों को भेज दे।

(कृष्णाजी का प्रस्थान)

बड़ी साहिबा—तुम भूल कर रहे हो। मैं कुछ और चाहती थी। आदमी बहादुर होता है, ताक़तवर होता है, लेकिन छल करने में औरत को नहीं पा सकता। अच्छा जाती हूँ, तुम मेरी बात नहीं सुनोगे।

(बड़ी साहिबा का प्रस्थान। अफ़ज़लखाँ की बेगमों का प्रवेश)

अफ़ज़ल—(फ़ज़ल मोहम्मद से) बाँध दो इनके हाथ-पाँव।

फ़ज़ल—अब्बा!

अफ़ज़ल—जल्दी करो। मेरा हुक्म है। जानते हो, हुक्म-उदूली की सज़ा मेरे पास मौत के सिवा कुछ नहीं! तुम मेरे बेटे हो, लेकिन मैं दुनियाँ के रिश्तों की परवाह नहीं करता।

(फ़ज़ल मोहम्मद बेगमों के हाथ-पाँव बाँध देता है)

अफ़ज़ल—इन सब को एक-दूसरी से बाँध कर एक साथ तालाब में डुबा दो।

फ़ज़ल—यह आप क्या कह रहे हैं, अब्बा!

बेगम—या खुदा, दुनियाँ में ऐसे बेरहम मर्द भी हो सकते हैं!

अफ़ज़ल—चुप रहो! अफ़ज़ल इनसान की जान को चींटी की जान से ज्यादा क़ीमती नहीं समझता। फिर मैं शिवाजी से मुलाकात करने जा रहा हूँ। किसे पता कि मैं ज़िंदा लौटूँ या नहीं। तुम मेरे बाद खानदान को दाग़ लगाओ, यह मैं नहीं चाहता। फ़ज़ल! ले जाओ इन्हें। अभी तालाब में डुबा दो।

फ़ज़ल—नहीं अब्बा! यह न हो सकेगा।

अफ़ज़ल—बदतमीज़ लड़के, तू नहीं जानता कि ख़ानदान की इज़्ज़त कितनी बड़ी चीज़ है !

दूसरी बेगम—हम आपसे रहम की भीख……

अफ़ज़ल—(खुद तीनों को खींचता हुआ) रहम ! अफ़ज़ल की लुग़त में नहीं है। मैं खुद तुम्हें तालाब में फेंके आता हूँ। उसके बाद अफ़ज़ल के पीछे कोई ऐसा न रहेगा जिसके लिए उसे ज़िंदा रहने की ज़रूरत महसूस हो। फिर वह शिवाजी को मारने या खुद मरने की पूरी तैयारी करके जा सकेगा।

(तीनों को घसीट ले जाता है। पीछे-पीछे खिन्न भाव से फ़ज़ल मोहम्मद का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—प्रतापगढ़ की तलहटी। मैदान में एक सजा हुआ शामियाना। शिवाजी और शंभूजी कावजी, गोपीनाथ, येसाजी कंक, जीव महाल आदि मराठा सरदारों का प्रवेश]

शिवाजी—वाह गोपीनाथ, अगर तुम फ़क़ीर बनकर अफ़ज़ल-ख़ाँ के डेरों में न जाते और उसका षडयंत्र मालूम न करते तो आज अचानक न जाने किस विपत्ति का सामना करना

पड़ता। आज यदि हम सफल हुए तो उसका श्रेय तुम्हीं को होगा!

गोपीनाथ—मैं तो आपका सेवक हूँ। अपना कर्तव्य पालन करता हूँ। इसमें श्रेय मिलने की क्या बात? और फिर मुझसे पहले आपने भी तो अफ़ज़ल के दूत कृष्णाजी पर वह जादू डाला कि वह खुद ही सारा षड्यंत्र उगल बैठा।

शिवाजी—वह भी तो भारतवासी है। जन्मभूमि के नाम पर जब उससे आग्रह किया गया तो तो वह कैसे झूठ बोल सकता था! देखो भाइयो, यह हम में से कोई नहीं जानता कि दो घड़ियों के बाद महाराष्ट्र का इतिहास किस स्याही से लिखा जायगा। इसी स्थान पर कुछ समय बाद अफ़ज़ल खाँ से मेरी भेंट होगी। संभव है, उसका षड्यंत्र सफल हो जाय और शिवाजी आप लोगों के अनुष्ठान—जन्मभूमि के स्वातंत्र्य-युद्ध—में आगे सहयोग देने को जीवित न रहे।

येसाजी—यह आप क्या कहते हैं? आप साक्षात् शंकर के अवतार हैं। बिना अपनी साधना को सफल किए···

शिवाजी—हाँ, हाँ, मैं अमर हूँ, जन्मभूमि की पुकार पर मस्तक चढ़ाने का हौसला रखने वाला प्रत्येक सिपाही अमर है, क्योंकि उसके बाद उसकी भावना जीवित रहती है। फिर भी आज जीवन और मरण के संधि-स्थल पर खड़ा होकर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ······

येसाजी—प्रार्थना नहीं, आज्ञा।

शिवाजी—जो पुरुष अवसर देखकर पीछे हटना जानता है, वह राष्ट्र का निर्माण करता है, लेकिन जो संकट में भी पीछे नहीं हटता, उस वीर पुरुष की पराजय भी राष्ट्र को स्फूर्ति प्रदान करती है। मैं यदि आज असफल भी रहा तो भी मुझे विश्वास है कि मेरा बलिदान व्यर्थ नहीं जायगा।

गोपीनाथ—फिर वही बात; महाराज! मैं कहता हूँ, आपका कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा।

शिवाजी—अफ़ज़ल पूरा दैत्य है। किसे पता है कि वह मेरी हड्डी-पसली चूर-चूर न कर देगा। कुछ भी हो, मैं केवल यह चाहता हूँ कि मेरे बाद भी साधना का यह दीपक निरंतर जलता रहे। यह ज्योति एक आत्मा से दूसरी आत्मा में पहुँचती हुई अटूट बनी रहे। मेरे बाद माँ जीजाबाई स्वातंत्र्य-साधना का नेतृत्व करेंगी। मुझे विश्वास है, आप लोग इसी उत्साह से कर्म-पथ पर आरूढ़ रहेंगे! अच्छा अब आप लोग जा सकते हैं केवल निश्चित व्यक्ति रह जावें।

(शंभूजी कावजी और जीव महाल के
अतिरिक्त सब का प्रस्थान)

जीव—आज जो सौभाग्य हमें मिल रहा है, उसके लिए हम आपके ऋणी हैं!

शिवाजी—यह तो देश का ऋण चुकाना है, भैया! वह देखो अफ़ज़ल की पालकी आ रही है। मैंने सब प्रबंध ठीक कर दिया है। प्रतापगढ़ के पूर्व की झाड़ियों में नेताजी पालकर की सेना तैयार

खड़ी है। जहाँ अफ़ज़लखाँ की विशाल सेना खड़ी है, वहाँ मैंने मोरोपंत को इसलिए नियुक्त किया है कि वे जंगल में छिप कर उसकी गति-विधि का निरीक्षण करें। धोखा होने पर येसाजी तुरंत बिगुल बजा देंगे। उसी समय गढ़ पर से तोप गरजेगी और मोरोपंत जावली की घाटी में स्थित अफ़ज़लखाँ की सेना पर धावा बोल देंगे।

शंभूजी—किन्तु आप अपनी रक्षा······

शिवाजी—वह तो भवानी ही कर सकती हैं। फिर भी मैं असावधान नहीं। यह देखो मेरे हाथों में बघनखा और कमर में कटार (कटार दिखाते हैं) छिपी हुई है। इसके अतिरिक्त मैंने वस्त्रों के नीचे कवच भी पहन रखा है। शिवाजी ऐसा मूर्ख नहीं जो अपनी रक्षा का कोई प्रबंध किए बिना ही शत्रु से भेंट करने आ जावे। (शिवाजी कटार छिपा लेते हैं) छिपी रहो, देवि, तुम जीवन लेकर राष्ट्र को जीवन प्रदान करती हो।

जीव—लो, वह अफ़ज़ल आ ही पहुँचा!

(अंगरक्षकों सहित अफ़ज़लखाँ का प्रवेश)

शिवाजी—आइए, खाँ साहब!

अफ़ज़ल—ओ हो! एक मामूली लुटेरे के ये शाही ठाट!

शिवाजी—एक बावर्ची के बेटे को राजाओं के ठाट की आलोचना करने का क्या अधिकार है?

अफ़ज़ल—क्या कहा? बदतमीज़!

(अफ़ज़लखाँ क्रुद्ध होकर शिवाजी पर लपक कर उन्हें बाहुओं में कस लेता हैं। फिर दोनों हाथों से शिवाजी की गरदन मरोड़ता है। शिवाजी उसके पेट में बघनखा घुसेड़ देते हैं। खून बह निकलता है। अफ़ज़ल तलवार का वार करता है; किन्तु शिवाजी बचकर, अपनी कटार से उस पर वार कर उसे बेबस कर देते हैं)

अफ़ज़ल—धोखा, धोखा! मदद, मदद!

(बेहोश होकर गिर पड़ता है। नेपथ्य में बिगुल बजता है। किले पर से तोप चलती है। दोनों पक्ष के अंग-रक्षकों में युद्ध होता है। सैयद बंदा आकर शिवाजी पर तलवार का वार करता है; शिवाजी का साफ़ा उड़ जाता है; पीछे से जीव महाल वार करके सैयद बंदा की तलवार काट गिराता है। सैयद भागने का प्रयत्न करता है, किंतु जीव महाल उसे मार गिराता है। इसी बीच अफ़ज़लखाँ के सिपाही आकर मूर्छित खाँ को उठा कर भागते हैं। शंभूजी कावजी और जीव महाल उनका पीछा करते हैं। जीजाबाई का प्रवेश; शिवाजी माँ के चरण छूते हैं)

जीजा—शाबास बेटा। आज तुम ने मृत्यु पर विजय पाई है। जब तुम संकट को गले लगाने चले थे, माँ के हृदय ने कहा था, रोक लो। पर जैसे उसी समय संभाजी ने मेरी आत्मा से कुछ कहा। नारी का हृदय प्रतिहिंसा से जल उठा। एक पुत्र के खून का बदला लेने के लिए माँ ने दूसरे पुत्र को प्रज्वलित ज्वालामुखी के मुँह पर डट जाने की आज्ञा दे दी।

(शंभूजी कावजी का अफ़ज़लखाँ का सिर लेकर प्रवेश)

शंभूजी—माँ यही हैं ! यह संभाजी के हत्यारे का मस्तक है। वे तो खाँ को ले ही भागे थे, पर मुझे याद आगया कि माँ को इसका सिर चाहिए। मैं टूट पड़ा उन सिपाहियों पर !

जीजा—इसे भवानी के मंदिर के पास दफ़ना कर उस पर एक बुर्ज बनवाया जायगा, जिससे आने वाली पीढ़ियों को याद रहे कि देश और धर्म का अपमान करने का क्या परिणाम होता है।

शंभूजी—अफ़ज़लखाँ की लाश को वे लोग जंगल में ही छोड़ गए हैं।

शिवाजी—नमकहराम कहीं के ! अच्छा तुम उसे आदर-पूर्वक प्रतापगढ़ की ढाल पर दफना दो। हमारा किसी व्यक्ति-विशेष से द्वेष नहीं, हम तो एक महान् साधना के साधक हैं। वीर शत्रु की लाश का उचित आदर होना चाहिए। उसकी अप्रतिष्ठा मराठों के गौरव के प्रतिकूल है।

(मोरोपंत का हाथ में ध्वज-स्तंभ, जिसका ऊपर का भाग स्वर्ण-निर्मित है, लेकर प्रवेश)

मोरोपंत—यह अफ़ज़लखाँ के तंबू का ध्वज-स्तंभ है।

जीजाबाई—इसे महाबलेश्वर के मंदिर की भेंट कर दो। चलो, अब क़िले में चलें। हमारे लिए आज का दिन शिवा-साधना के प्रवेश-द्वार में प्रवेश करने का दिन है।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[दिल्ली का लाल क़िला । औरंगज़ेब का खास कमरा ।
रोशनआरा का प्रवेश]

रोशनआरा—कहाँ है वह ? मैं समझाना चाहती थी उसे, मगर दरहक़ीक़त मैं उसके सामने बोलने में भी खौफ़ खाती हूँ । मेरी एक ग़लती ने कहर ढा दिया । मेरे एक ख़त ने दिल्ली का तख्त पलट दिया ! मुझे यह नहीं मालूम था कि औरंगज़ेब तख्त लेने के लिए भाइयों का खून करेगा, बूढ़े लाग़र बाप को गिरफ्तार कर लेगा । हाय री क़िस्मत ! अब कोई चारा नहीं है । अब तो मुझे ज़िंदगी भर दोज़ख़ की आग में जलना पड़ेगा ।

(जहानारा का हाथ में छुरी लिए प्रवेश)

जहानारा—कहाँ है वह ख़ूनी, ज़ालिम ? दरिया-दिल बूढ़े बाप को पानी के लिए तरसाने वाला ? मैं उसका ख़ून करूँगी ।

रोशनआरा—जहानारा, तुम्हें क्या हुआ बहन ! सारे फ़साद की जड़ तो मैं हूँ । उसका नहीं, मेरा ख़ून करो । तुम न कर सको, तो छुरी मुझे दो, मैं अपने हाथ से इसे कलेजे के पार कर दूँ ।

जहानारा—क्यों रोशनआरा ! तुमने किसी का क्या बिगाड़ा है ?

रोशनआरा—मैंने ? मैंने भाइयों का ख़ून कराया है, उनके

मासूम बच्चों का बेरहमी से क़त्ल कराया है, बूढ़े बाप को गिरफ्तार कराया है। औरंगज़ेब ने जो कुछ किया, वह सब मेरी ग़लती से।

जहानारा—बहन, तुम औरंगज़ेब को प्यार करती हो, इसीलिए उसे बचाना चाहती हो, उसका कुसूर अपने सर पर लेना चाहती हो। बहादुर भाई को प्यार करना गुनाह नहीं, पर दारा भी तो भाई था, मुराद भी तो भाई था! और उनके मासूम बच्चे! उन का क्या कुसूर था? रहम की इस क़दर पामाली! इनसानियत की इतनी हतक! उफ़्, क्या कहूँ! औरंगज़ेब! (दाँत पीसती है)

रोशनआरा—मैं सच कहती हूँ, मुग़ल खानदान के इतने लोगों के खूने नाहक़ की ज़िम्मेदार मैं ही हूँ। मैंने ही औरंगज़ेब को दक्खिन में अब्बा की बीमारी की खबर भेजी थी। लेकिन बहन! मैंने यह न सोचा था।

जहानारा—बहन! तुमने औरंगज़ेब को नहीं पहचाना। तुम्हारे प्यार का दारा भी उतना ही हक़दार था, जितना औरंगज़ेब। क्या बहन एक भाई की मुहब्बत के लिए दूसरे भाई का खून करा सकती है!

रोशनआरा—मैं यह नहीं चाहती थी, जहानारा! ख़ुदा गवाह है, मैं हर्गिज़ यह नहीं चाहती थी!

जहानारा—नहीं चाहती थीं! तो लो यह छुरी, वह तुम पर यकीन करता है, उस बेक़ुसूर बाप के दुश्मन ज़ालिम बेटे का खून तुम आसानी से कर सकोगी।

रोशन—खून ! न बहन, खून का बदला खून नहीं है । मैं किसी का खून नहीं कर सकती । औरंगज़ेब गुमराह हो सकता है, मगर है तो हमारा भाई ही न । हम रात-दिन आँसुओं की ज़बान में दारा और मुराद से उनके भाई औरंगज़ेब के लिए माफी माँगेगी । जो हो गया, वह हो गया । वह एक अज़ाब की आँधी आई थी, उसे जो उलट पलट करना था, वह उसने कर दिया । क्या आगे भी वही क़त्लों का, इनसान को भेड़िये से ज्यादा खूँख्वार बनानेवाले कत्लों का, दौरा चलने दिया जाय ?

(औरंगज़ेब का प्रवेश)

औरंगज़ेब—कौन ? रोशनआरा और जहानारा ! यह छुरी कैसी ?

जहानारा—मैं तुम्हारा खून करने आई थी, लेकिन नहीं तुम मेरे भाई हो । लो, यह छुरी लो । तुम मेरा खून मरो, रोशनआरा का खून करो, अब्बा का खून करो । जब सब गए तो हम ही क्यों रहें ? शाहजहाँ की कोई निशानी क्यों बाकी रह जाय ? यह दिल्ली की सल्तनत भी शाहजहाँ की निशानी है । इस में भी आग लगा दो औरंगज़ेब ! इसे भी तहस-नहस कर डालो ।

औरंगज़ेब—जहानारा, तुम होश में नहीं हो । दारा के कमज़ोर हाथों में यह सल्तनत दो दिन भी न ठहरती । मुग़ल सल्तनत किसी एक शख्स की चीज़ नहीं, वह दीन-इस्लाम की धरोहर है, उसके लिए उसके बंदे बड़ी से बड़ी कुर्बानी कर सकते हैं । सल्तनत को क़ायम रखने के लिए सब कुछ किया जा सकता है,

हक़ के बंदे को भाई का खून भी करना पड़ता है। जाओ, इस वक्त तुम जाओ। शाइस्ताखाँ आ रहे हैं, उनसे मुझे ज़रूरी बातें करनी हैं।

(जहानारा और रोशनआरा का प्रस्थान)

औरंगज़ेब—(अकेला) औरंगज़ेब, तू किधर जा रहा है। अज़ाब के काले समुन्दर में ज़िंदगी की नाव बह पड़ी है। जहानारा तूने क्या कहा—दिल्ली की सल्तनत में भी आग लगा दूँ, यह भी शाहजहाँ की निशानी है! सच है, मेरे अज़ाब दर-असल इस सल्तनत को ले डूबेंगे।

(शाइस्ताखाँ का प्रवेश)

शाइस्ताखाँ—आदाब, बादशाह साहब!

औरंगज़ेब—मामा साहब, क्यों शर्मिंदा करते हैं। औरंगज़ेब आज तख्त पर आप ही की मदद से बैठा है। आप मेरा साथ न देते तो सल्तनत दारा के कमज़ोर हाथों में पड़ कर टुकड़े-टुकड़े हो जाती।

शाइस्ताखाँ—लेकिन आसार तो अब भी अच्छे नहीं हैं। दक्खिन से जो खबरें आ रही हैं, उन्हें बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता।

औरंगज़ेब—इसीलिए मैंने आप को बुलाया था। शिवाजी को मैंने अपनी गद्दीनशीनी पर दरबार में आने की दावत दी थी, लेकिन उसने यह कहकर कि दग़ाबाज़, भाई के खूनी, बाप को कैद करने वाले औरंगज़ेब के दरबार में शिवाजी की छाया भी नहीं

जा सकती, मेरे एलची को बेइज्ज़त कर वापस कर दिया। इस बेइज्ज़ती का बदला लेना होगा।

शाइस्ताखाँ—बेशक !

औरंगज़ेब—इस वक़्त अफ़ज़लखाँ के क़त्ल का बदला लेने के लिए अली आदिल शाह ने अपनी पूरी ताक़त के साथ शिवाजी पर हमला किया है। यह मौका है कि उसे कुचल दिया जाय। आप राजा जसवन्तसिंह को साथ लेकर दक्खिन की ओर फौरन कूच कीजिए।

शाइस्ताखाँ—बहुत अच्छा। शाइस्ताखाँ शिवाजी को वह सबक पढ़ावेगा कि उसकी आज़ादी की चिल्ल-पों बिलकुल ख़त्म हो जायगी। बग़ावत में साथ देने वाले गाँवों को जलाकर ख़ाक कर दूँगा। लोग जानें तो सही कि मुग़ल सल्तनत के खिलाफ़ बग़ावत करने का क्या नतीजा होता है !

औरंगजेब—बिलकुल दुरुस्त है। बग़ावत को मुँह उठाने के पहले ही कुचल देना चाहिए, चाहे उसमें किसी पर ज़ुल्म ही हो। चलिए, अब नमाज़ का वक्त हो रहा है।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

———

चौथा दृश्य

[स्थान—चाकन का किला, फिरंगाजी नरसाला एक अधटूटी दीवार के पास खड़े हैं; उनके दोनों ओर दो-तीन मराठे सरदार खड़े हैं]

फिरंगाजी—अब मेरे जीवन के दिन समाप्त हो गए, मैंने शाहजी के साथ बचपन से युद्ध-भूमि में तलवार चलाई; शिवाजी ने भी मुझे अपने स्वातन्त्र्य-साधना के काम में साथ लिया; इससे अच्छा इस बुढ़ापे का क्या उपयोग हो सकता था ? किंतु खेद है कि इतना प्रयास करने पर भी मैं इस चाकन दुर्ग की रक्षा न कर सकूँगा।

एक सरदार—अभी से निराश होने की क्या आवश्यकता है, फिरंगाजी !

फिरंगाजी—निराश ! नहीं निराशा वीरों के लिए नहीं बनी है। रक्त का एक भी कण शेष रहते वे कायर नहीं बनते, किन्तु परिस्थितियों पर तो विचार करना ही पड़ता है। भाइयो, आज महाराष्ट्र देश पर विपत्ति के बादल उमड़ आए हैं ! शिवाजी को बीजापुरी सेना ने पन्हाला दुर्ग में घेर लिया है, इधर शाइस्ताखाँ के सेनापतित्व में मुग़ल सेना ने पूना के पूर्व और दक्षिण के सभी

गढ़ों पर अधिकार कर लिया है। उत्तरी कोंकण भी उन्होंने दबा लिया है, और इधर ५४ दिनों से चाकन पर घेरा डाले पड़े हैं।

दूसरा सरदार—चाकन पर शाइस्ताखाँ का इतना मोह क्यों है ?

फिरंगा—यह इस प्रदेश की कुंजी है, भैया! शाइस्ताखाँ का विचार था कि बरसात भर पूना में रहकर युद्ध की तैयारी करे, क्योंकि बरसात में इन पश्चिमी घाटों पर युद्ध करना असंभव है। किंतु हमने पूना के आस-पास के सभी ग्रामों को उजाड़ दिया, रसद का आवागमन बंद कर दिया। अब यह चाकन ही वह स्थान है, जहाँ से अहमदनगर को मार्ग जाता है। यह स्थान मुग़लों के हाथ में आने पर वे रसद और युद्ध की सामग्री आसानी से मँगा सकेंगे। यदि हमें मुग़लों से लोहा लेना है, लोहा लेकर उनके दाँत खट्टे करने हैं तो चाकन की रक्षा करना आवश्यक है।

पहला—हम एक-एक अंगुल भूमि के लिए युद्ध करेंगे, फिरंगाजी! आगे जो भवानी की इच्छा।

फिरंगाजी—किले का यह उत्तर-पूर्व वाला बुर्ज ५४ दिन के घोर परिश्रम के बाद सुरंग बनाकर मुगलों ने उड़ा दिया है। हमने दूसरी दीवार बनाने का प्रयत्न किया, और रातों-रात बना भी डाली, किंतु मुगलों के टिड्डी-दल से युद्ध करना कब तक संभव था? कुछ क्षणों की देर है कि हमें यह स्थान भी छोड़ना पड़ेगा। यदि इस समय थोड़ी भी सेना मेरी सहायता को आ जाती, किले की

मरम्मत के लिए मैं एक रात और पा सकता, तो फिर देखता कि शाइस्ताखाँ चाकन को किस प्रकार लेता है ?

(गोपीनाथ का प्रवेश)

फिरंगाजी—कौन ? गोपीनाथ जी !

गोपीनाथ—हाँ, फिरंगाजी ! मैं यह कहने आया था कि चाकन की रक्षा के लिए इस समय सेना नहीं आ सकेगी। शिवाजी पन्हाला के दुर्ग में घिरे हुए हैं। अवस्था वहाँ भी नाज़ुक है। उनकी राय है कि यदि चाकन की रक्षा असंभव हो जाय, तो उसे शत्रु को सौंप दिया जाय।

फिरंगा—यह आप क्या कहते हैं, गोपीनाथ जी !

गोपीनाथ—साम्राज्यों का निर्माण केवल प्राण गँवाने के पागलपन से नहीं होता। साम्राज्य-निर्माण करने वाले को कभी दो कदम आगे बढ़ना पड़ता है तो कभी दस कदम पीछे हटना पड़ता है। उसकी हार-जीत का निर्णय तो अंतिम परिणाम देखकर किया जाता है।

फिरंगा—इस बुढ़ापे में शत्रु को पीठ दिखाने का कलंक भी लगना था, उफ़् !

गोपीनाथ—राष्ट्र के महान् उद्देश्य की साधना में व्यक्तियों को अपकीर्ति को भी शंकर का निर्माल्य मान कर ग्रहण करना चाहिए। मनुष्य में यश का अमृत ही नहीं, अपयश का कालकूट पीने का भी बल होना चाहिए। यह स्वराज्य-साधना का मार्ग ही ऐसा है। बोलो, फिर चाकन के भाग्य का क्या निर्णय करते हो ?

फिरंगा—महाराज की इच्छा के आगे सिर झुकाना हमारा परम धर्म है।

(गोपीनाथ का प्रस्थान । शाइस्ताखाँ का कुछ सिपाहियों के साथ प्रवेश)

शाइस्ताखाँ—बोलो, फिरंगाजी ! किले की चाबियाँ सौंपते हो, या अब भी जंग करने की ख़्वाहिश है ?

फिरंगाजी—दो शत्रुओं का—बीजापुर और मुग़लों का—एक साथ आक्रमण न होता, तो फिरंगाजी आपकी ख़्वाहिश पूरी कर दिखाता। उसने शाहजी के सेनापतित्व में मुग़लों से कई बार मुठभेड़ की है। आपकी तलवार मेरे लिए अपरिचित नहीं है, शाइस्ताखाँ !

शाइस्ताखाँ—मैं आपकी बहादुरी का क़ायल हूँ, फिरंगाजी ! मैं आपकी इज़्ज़त करता हूँ। आप चाहें, तो बादशाह औरंगज़ेब से आपको अच्छा मनसब और जागीर दिला सकता हूँ।

फिरंगाजी—नहीं, मुग़ल सेनापति ! ऐसी बात सुनना भी पाप है। जन्मभूमि के लिए युद्ध करते-करते ये बूढ़ी हड्डियाँ निष्प्राण हो जावें—मेरी तो बस यही कामना है। आपको किला चाहिए—वह मैं अपने प्रभु की आज्ञा से आपको सौंप देता हूँ। इस बूढ़े को फाँसी पर चढ़ाने की इच्छा हो, तो इसे भी गिरफ़्तार कर सकते हैं, किंतु, जागीर, मनसब और धन का लालच देकर मुझे जन्मभूमि के विरुद्ध तलवार उठाने को आप मज़बूर न कर सकेंगे। बोलिए, मुझे गिरफ्तार करना है।

शाइस्ताखाँ—शाइस्ताखाँ इतना नीच नहीं है। वह बहादुर और बुजुर्ग की इज्ज़त करना जानता है। उसकी तलवार में ताक़त है। वह मैदान में लोहा लेना पसंद करता है, बेबसों को फाँसी देना नहीं। आप जा सकते हैं।

(फिरंगाजी का साथियों के साथ प्रस्थान)

शाइस्ताखाँ—अब हमारा रास्ता साफ़ हो गया।

(सब के साथ प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—पाँढरपाणी की घाटी। बाजी देशपांडे और एक मराठा सरदार बात कर रहे हैं]

बाजी—आदिलशाह ने खूब छाँटकर आदमी भेजा है। यह हबशी सरदार सिद्दी जौहर साक्षात् दैत्य ही है। पश्चिमी घाटों के नदी-नालों और झरनों से परिप्लावित उपत्यकाओं में, इन मूसलाधार वर्षा के दिनों में किसकी हिम्मत है कि सैन्य-संचालन करे! पर शाबास सिद्दी, तूने एक क्षण के लिए भी आक्रमण ढीला न किया।

सरदार—आदिलशाह के पास ऐसी लगनवाला सेनापति एक और होता तो शिवाजी को लेने के देने पड़ जाते।

बाजी—लेकिन शिवाजी न केवल तलवार ही चलाना जानते

हैं, बल्कि उनकी वाणी में भी जादू है। जैसे सँपेरा तूँबी बजाकर काले नाग को भी वश में कर लेता है, उससे मनमाने नाच नचाता है, उसी तरह शिवाजी शत्रु को अपने पक्ष में कर लेते हैं। आखिर उन्होंने सिद्दी जौहर को आदिलशाह का साथ छोड़ने को राज़ी कर ही लिया। अफ़ज़लखाँ का बेटा फ़ज़ल मोहम्मद टापता ही रहा और वे पन्हाला के घेरे से निकल ही आए।

सरदार—किंतु फ़ज़ल मोहम्मद तो अभी पीछा कर ही रहा है और वह अत्यंत निकट है।

बाजी—विशालगढ़ अब सिर्फ ३ कोस की दूरी पर है। शिवाजी मुझे इस घाटी में छोड़ गए हैं। उन्होंने कहा है कि जैसे ही मैं गढ़ में पहुँचूँगा, तोप दगवा दूँगा। फिर तुम भी घाटी का रास्ता छोड़कर गढ़ में चले जाना।

(फ़ज़ल मोहम्मद का कुछ सैनिकों के साथ प्रवेश)

फ़ज़ल—मक्कार सिद्दी जौहर ! दग़ाबाज़, बेईमान ! तूने शिवाजी की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर उसे पन्हाला के किले से निकल जाने दिया। पर वह पहाड़ी चूहा बचेगा कहाँ ? अब्बा के खून का बदला न लिया तो मैं अफ़ज़लखाँ की औलाद नहीं। पठानों ने बदला लेना खूब सीखा है।

(आगे बढ़ता है, बाजी रोकता है)

बाजी—आगे बढ़े तो मौत है।

फ़ज़ल—कौन ? बाजी ! तुम यहाँ कहाँ ? अपने दुश्मन के साथ। अपने मालिक चन्द्रराव मोरे का खून करने वाले के साथ।

बाजी—जब तक मैं चंद्रराव का सेवक था, मैंने उसके पक्ष में शिवाजी के विरुद्ध तलवार चलाई। अब जब मैं शिवाजी का सेवक बना हूँ तो उनकी नमकहलाली करूँगा।

फ़ज़ल—आदिलशाही में तुम्हें इससे भी ऊँचा ओहदा मिल सकता है।

बाजी—लेकिन जन्मभूमि की बंधन-मुक्ति के अनुष्ठान में प्राण देने का पुण्य तो आप लोग नहीं दिला सकते।

फ़ज़ल—सोचो तो बाजी, आज शाहजी की कितनी इज़्ज़त और धाक बीजापुर में है! यह सब तुम्हें भी हासिल हो सकता है। शिवाजी के साथ फ़िज़ूल जंगल-जंगल मारे फिरने से क्या हाथ आयगा?

बाजी—माँ के चरणों में बलिदान होने का सौभाग्य! उससे मुझे दुनिया की कोई शक्ति वंचित नहीं कर सकती।

फ़ज़ल—वह देखो मेरी सेना आ रही है। इतनी विशाल सेना के आगे तुम मुट्ठी भर मराठे क्या कर सकते हो?

बाजी—जब तक शिवाजी विशालगढ़ में नहीं पहुँचते, एक चिड़िया भी इस घाटी के पार नहीं जा सकती। स्वयं यम भी मुझे यहाँ से नहीं हटा सकता।

फ़ज़ल—पहाड़ की भी मज़ाल नहीं कि फ़ज़लमोहम्मद का रास्ता रोक सके, तुम्हारी तो हस्ती ही क्या है!

(तलवार चलाता है। बाजी वार बचा कर आक्रमण करता है। लड़ते-लड़ते दोनों का प्रस्थान। मराठों की सेना के कुछ सिपाही

पीछे से आगे बढ़ आते हैं और तीरों से सामने के शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं। उस ओर से भी तीर आते हैं, बंदूकें चलती हैं। बाजी का पुनः प्रवेश)

बाजी—भाग गया कायर! शाबाश वीरो, जब तक विशालगढ़ से तोप का प्रलयंकर गर्जन न सुनाई दे, तब तक एक कदम भी पीछे न हटना। भाइयो, हमारे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। मरने में भी हमारी विजय है और जीवित रहने में भी। शिवाजी हमारे देश का आततायियों के हाथों से उद्धार करने आए हैं, दीन-दुखियों को संकट से छुटकारा दिलाने आए हैं। उनके प्राणों को हमारे जीवित रहते ज़रा भी आँच न आने पावे।

एक सैनिक—शत्रु बहुत निकट आगए हैं। हम मुट्ठी भर सिपाही क्या कर सकते हैं? हमें अब रास्ता छोड़ देना चाहिए। शिवाजी काफ़ी दूर निकल गए हैं। वे अब किले में पहुँचने हो वाले होंगे। अब आप क्यों व्यर्थ प्राण देने पर तुले हुए हैं?

बाजी—नेता की आज्ञा एक सैनिक के लिए ईश्वरीय संकेत है। मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि मैं तोप की आवाज़ सुने बिना एक कदम भी पीछे नहीं हटूँगा।

(एक गोली आकर बाजी को लगती है, वह गिर पड़ता है; साथ ही क़िले पर से तोप चलने की आवाज़ आती है।)

बाजी—(गिर कर) सुनो, तोप की आवाज़ सुनो। शिवाजी सुरक्षित गढ़ में पहुँच गए। अब मेरा कर्तव्य पूरा हुआ। देश को

स्वतंत्र करनेवाले महाप्राण की रक्षा में मैं प्राणों की आहुति देकर सहर्ष महा-निद्रा में सो रहा हूँ। (मृत्यु)

(मराठे सैनिक लाश को उठाकर ले जाते हैं।
फ़ज़ल मोहम्मद का प्रवेश)

फ़ज़ल—शाबाश बाजी! तुमने मेरी सारी मेहनत बेकार कर दी। शिवाजी क़िले में पहुँच ही गया। शिवाजी का एक-एक सिपाही एक-एक लाख के बराबर है, यह तुम को देख कर जाना जा सकता है।

(प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

छठा दृश्य

[स्थान—जेजुरी का मंदिर। शिवाजी, जीजाबाई, शिवाजी की दूसरी पत्नी सोरयाबाई, मोरोपंत पिंगले, येसाजी कंक तानाजी मालुसुरे तथा अन्य सरदार बैठे हैं]

शिवाजी—वास्तव में आज बड़े आनंद का दिन है। आज महामना पिताजी अपने विद्रोही पुत्र को आशीर्वाद देने आ रहे हैं। मोरोपंत जी, मेरे संपूर्ण राज्य में आज दीपावली जलाने की आज्ञा दे दी है न?

मोरोपंत—जी हाँ!

शिवाजी—अच्छा, स्वर्गीय बाजी देशपांडे के ज्येष्ठ पुत्र बालाजी बाजी देशपांडे को बुलाइए।

(मोरोपंत का प्रस्थान)

शिवाजी—बाजी देशपांडे की वीरता और उनका अभूतपूर्व बलिदान उन्हें भारतीय इतिहास में जाज्वल्यमान सितारे की तरह चमकाता रहेगा। पाँढरपाणी की घाटी में यदि उन्होंने फ़ज़लमोहम्मद की सेना को न रोका होता तो आज यह उत्सव मनाने के लिए हम एकत्र न हो सकते थे। मेरा रोम-रोम उनका ऋणी है, मेरे जीवन की प्रत्येक श्वास उनके प्रति कृतज्ञता का मधुर भार वहन करती है।

(मोरोपंत का बालाजी के साथ प्रवेश)

शिवाजी—बालाजी, तुम्हारे पिता ने जीवन की बलि देकर मुझ पर ही नहीं, सारे महाराष्ट्र पर जो उपकार किया है, उसका बदला कुबेर का भंडार देकर भी नहीं चुकाया जा सकता। मैं तुम्हें आज बख़्शी के पद पर नियुक्त करता हूँ। सारी सेना को वेतन देने का कार्य तुम्हारा है। मोरोपंतजी, इन्हें बहुमूल्य आभूषण भेंट किए जावें और जागीर भी दी जावे। इनके भाइयों को सबनीस के स्थान पर नियुक्त किया जावे!

बालाजी—यह आपकी कृपा है, महाराज! इसका अपमान करने का साहस सेवकों में नहीं हो सकता; किन्तु पिताजी ने जिस प्रकार किसी पुरस्कार की अपेक्षा किए बिना जन्मभूमि के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन किया है, हम भी उसी प्रकार उनके पद-चिह्नों पर चल सकने का आशीर्वाद चाहते हैं।

शिवाजी—मातृ-भूमि की परतंत्रता की बेड़ियाँ काटना, प्रत्येक वीर का कर्तव्य है। मुझे विश्वास है, कि इस महान् अनुष्ठान में

मुझे तुम्हारा सहयोग सदा प्राप्त होता रहेगा। अच्छा, अब तुम जा सकते हो।

(बालाजी का नमस्कार करके प्रस्थान)

शिवाजी—आज मुझे अपने बाल्य-बंधु बाजी पासलकर की याद आती है। वे दिन रह-रह कर स्मरण हो आते हैं, जब हम सह्याद्रि की घाटियों में हरिण के बच्चों की भाँति क्रीड़ा करते थे। आज वह दिन आँखों के सामने नाच रहा है; जब येसाजी कंक, तानाजी मालुसुरे, बाजी पासलकर और मैंने भवानी के मंदिर में देश के लिए प्राण देने की शपथ ली थी।

जीजाबाई—भैया, उसकी याद से मेरी आँखों में भी आँसू आ जाते हैं।

मोरोपंत—वे दिन कैसे भयंकर थे! आप पन्हाला में सिद्दी जौहर के द्वारा घिरे हुए थे। शाइस्ताखाँ ने पूना के गाँवों को नष्ट कर चाकन पर आक्रमण कर रखा था। जंजीरा के सिद्दी सरदार ने तालागढ़ पर धावा बोल दिया था और देश-द्रोही वाडी के सावंतों ने कोंकण में क़त्ले-आम कर रखा था। गोआ के पोर्चगीज़ों ने आपको मार डालने का षड्यंत्र अलग रचा था। आख़िर सारे दुश्मनों को मुँह की खानी पड़ी।

शिवाजी—बाजी पासलकर आखिरी दम तक शत्रु के छक्के छुड़ाते रहे। सावंतों का राज्य धूल में मिल गया। आज देश-द्रोही सावंतों के झंडे की जगह हमारा झंडा फहरा रहा है। काई सावंत और बाजी पासलकर का द्वन्द्व स्वतंत्रता के पुजारियों के प्राणों में

सदा स्फूर्ति भरता रहेगा। उस द्वन्द्व में दोनों मारे गए, किंतु विजय हमारी ही रही।

मोरोपंत—अब तो पोर्चगीज़ों ने भी हमें वार्षिक कर तथा तोपें देने का वचन दिया है।

शिवाजी—जंजीरा के सिद्दियों तथा इन फिरंगियों की तनिक भी उपेक्षा करना उचित नहीं। हमें अपनी जल-सेना को खूब सुदृढ़ बनना चाहिए। बीजापुर और दिल्ली की सल्तनतों के समाप्त हो जाने पर समुद्र मार्ग से व्यापारियों के छद्मवेश में आने वाली ये जातियाँ ही भारतीय स्वतंत्रता की शत्रु साबित होंगी। हमें इनसे भी निबटना है।

(शाहजी का अपनी दूसरो पत्नी तथा पुत्र व्यंकोजी के साथ प्रवेश। शिवाजी उठकर उनके चरण छूते हैं)

शाहजी—(शिवाजी को गले लगाते हैं, दोनों की आँखों में आँसू) यशस्वी हो, बेटा ! आज आनंद के ज्वार में वाणी की ताकत बही जा रही है।

शिवाजी—आज्ञा-पालन न कर सकने वाले इस अपराधी पुत्र को क्षमा कीजिए, पिताःजी ! इस कपूत के कारण इस बुढ़ापे में आप को कारागार का कष्ट उठाना पड़ा।

शाहजी—देश की स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करने वाले पुत्र पर किस अधम पिता को अभिमान न होगा ?

(जीजाबाई पति के चरण छूती हैं)

जीजा—मुझे भी पुत्र के पराक्रम के कारण पति के

पुनीत दर्शन प्राप्त हुए हैं, मैं भी आपकी अपराधिनी हूँ, स्वामी !

शाहजी—उठो, जीजाबाई ! (उठाते हैं) तुम जैसी वीर-पत्नी और आदर्श माँ संसार के इतिहास में और कौन हो सकती है ? मैं स्वयं तुम्हारा अपराधी हूँ।

जीजा—(फिर चरणों में गिर जाती है) स्वामी, यह आप क्या कहते हैं ? आज सचमुच बड़े सुख का दिन है। आज मुझे इन चरणों में स्थान मिला है। इन्हीं चरणों में आज मेरे प्राण निकाल जावें, यही मेरे हृदय की कामना है।

शाहजी—ऐसा न कहो जीजाबाई, अभी तुम्हें बहुत कार्य करना है।

शिवाजी—बैठिए, पिताजी ! (शाहजी को आदरणीय स्थान पर बैठाते हैं, सब लोग बैठते हैं)

शाहजी—बीजापुर दरबार ने तुमसे संधि का प्रस्ताव भेजा है। उन्होंने उत्तर में कल्याण, दक्षिण में फोंडा, पश्चिम में दभोय तथा पूर्व में इन्दापुर तक संपूर्ण प्रदेश पर तुम्हारा स्वतंत्र राज्य स्वीकार कर लिया है। बोलो, अब तुम क्या चाहते हो ?

शिवाजी—इस बार आप की आज्ञा का पालन होगा।

शाहजी—देखो बेटा, मैंने बीजापुर का नमक खाया है, मैं इस राज्य का सर्वथा विध्वंस अपनी आँखों से नहीं देख सकता। मेरे जीते-जी अब तुम बीजापुर पर आक्रमण न करना।

शिवाजी—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

(गोपीनाथ का प्रवेश)

गोपीनाथ—(नमस्कार करने के बाद) एक मुग़ल दूत यह पत्र लेकर आया है। (पत्र शिवाजी को देता है, शिवाजी मोरोपन्त को देते हैं)

शिवाजी—इसे पढ़ो।

मोरोपंत—यह शाइस्ताखाँ का पत्र है। इस में लिखा है—तुम पहाड़ी बंदर हो। जब तक तुम गुफाओं में छिपे हो, तुम्हारी ख़ैर है। मैदान में आने की तुम्हारी हिम्मत नहीं। फिर भी शाइस्ताखाँ जल्द ही तुम्हारा शिकार करेगा।

शिवाजी—इसे लिख दो—शिवाजी बंदर तो है, मगर वह बंदर जिसने लंका में आग लगाई थी। वह तुम्हें भी शीघ्र ही दर्शन देगा। बीजापुर से निश्चित होकर अब शाइस्ताखाँ की ख़बर ली जायगी। अच्छा, अब भवानी की आरती करके घर चलना चाहिए।

शाहजी—लाओ, आज की आरती मैं करूँगा।

(शाहजी थाल में कपूर जलाकर आरती करते हैं, सब गाते हैं)

सब— जयति-जयति जय जननि भवानी!

नर-मुंडों की मालावाली,
क्यों है तेरा खप्पर खाली,
माँ, तेरे नयनों की लाली,
भरे राष्ट्र में नई जवानी!
जयति-जयति जय जननि भवानी!

धधक उठे भीषण रण-ज्वाला
उठे हाथ तेरा असिवाला,
गूँज उठे यह पर्वत-माला,
गरज उठे तेरी जय-वाणी !
जयति-जयति जय जननि भवानी !

(आरती समाप्त होती है। सब भवानी की मूर्ति के आगे सिर झुकाते हैं)

जीजाबाई—माँ भवानी, शीघ्र ही वह दिन लाओ, जब स्वतंत्र आकाश और स्वाधीन पृथ्वी पर हम भारतवासी तुम्हारी आरती कर सकें।

[पटाक्षेप]

❀ ❀
❀
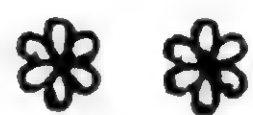
तीसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—प्रबलगढ़। मोरोपंत पिंगले और नेताजी पालकर बात-चीत कर रहे हैं।]

मोरोपंत—किसने सोचा था कि शंभूजी कावजी जैसा विश्वास-पात्र व्यक्ति, जिसने जावली के हनुमंतराव मोरे जैसे देश-द्रोही को मौत के घाट उतारा था, क्रोध के एक आवेश में मुगलों से जा मिलेगा।

नेताजी—शिवाजी ने उससे कहा था कि जिस व्यक्ति के दो मित्र बाबाजी राव तथा हनप्पा देशपांडे शत्रु से मिल गए हैं, उसका विश्वास कैसे किया जाय! इससे उसके स्वाभिमान को धक्का ज़रूर लगा।

मोरोपंत—देश का हित स्वाभिमान से भी ज़्यादा मूल्यवान है। यह अच्छा हुआ कि तुमने उसे पराजित ही नहीं किया बल्कि उसे इस दुनियाँ से बिदा ही कर दिया। देश-द्रोही इस घटना से चौकन्ने हो जावेंगे।

(शिवाजी का येसाजी कंक और तानाजी मालुसुरे के साथ प्रवेश)

शिवाजी—पेशवा मोरोपंत और सेनापति नेताजी पालकर किस विषय पर परामर्श कर रहे हैं?

मोरोपंत—यही शंभूजी कावजी की बात सोच रहे थे।

शिवाजी—देश-द्रोह का यही पुरस्कार है। उसने अपने बचपन से आजतक के स्वार्थ-त्याग, देश-प्रेम और आत्म-बलिदान पर पानी फेर दिया। अच्छा नेताजी, केसरीसिंह की माँ और बेटी को उपस्थित करो।

(नेताजी का प्रस्थान)

शिवाजी—इस प्रबलगढ़ के क़िलेदार केसरीसिंह ने अद्‌भुत साहस का परिचय दिया था। इस गढ़ को जीतने पर मुझे खेद भी है और प्रसन्नता भी! मोरोपंतजी, जब मैं उस जौहर की ज्वाला की तरफ देखता था, जिसमें केसरीसिंह के कुटुंब की स्त्रियों ने जलकर प्राणोत्सर्ग किया था, तो मेरा मस्तक लज्जा और पश्चात्ताप से झुक जाता था। राजपूत जाति के इस स्वाभिमान, इस आत्म-बलिदान को संसार की और कौन-सी जाति पा सकती है?

(नेताजी का केसरीसिंह की माँ और पुत्री को लेकर प्रवेश)

शिवाजी—आओ माँ, आओ, बहन!

केसरीसिंह की माँ—मैं यह क्या सुन रही हूँ? ऐसा प्यारा संबोधन! इसे सुनसर किस नारी का हृदय फूला न समावेगा? तुमने मुझसे मेरे बेटे केसरीसिंह को छीन लिया है, फिर भी मैं यह संबोधन सुनकर तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारी साधना सफल हो।

शिवाजी—ऐसे वीर पुरुष की माँ का कौन आदर न करेगा? तुम्हारा पुत्र वास्तव में वीर था, और उसने दृढ़ता से अपना

कर्तव्य-पालन किया ! उन लोगों का दृष्टिकोण भिन्न था। उन्होंने स्वामी की सेवा को देश-सेवा के ऊपर स्थान दिया और अपने विश्वास पर जान दे दी। उनके लिए वही उचित था। किंतु, एक बात मैं कहे बिना न रहूँगा, कि आप लोगों ने शिवाजी को समझने में भूल की है। उधर देखो, उस जौहर की ज्वाला को। क्या इसकी इस अवसर पर भी आवश्यकता थी ?

केसरीसिंह की माँ—भैया, राजपूतनियों का यह शाश्वत धर्म है। किसी भी शत्रु के हाथ में पड़कर कलंकित जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा हम अग्नि-देव को अपना जीवन समर्पित कर देना श्रेयस्कर समझती हैं। मुझे खेद है कि मैं उनके साथ न जा सकी। केवल इस बच्ची के कारण। केसरीसिंह का कुछ तो चिह्न......

शिवाजी—माँ, शिवाजी केवल हिंदुओं की ही नहीं, प्रत्येक जाति की महिला को माँ और बहन ही समझता है। मेरे द्वारा राजपूत देवियों का अपमान होने की कल्पना आप लोगों को क्यों हुई ?

केसरीसिंह की माँ—जिनके भाई, पिता, पति और पुत्र सभी लड़ते-लड़ते बीर-गति पा चुके, जिनका संसार में कोई आश्रय नहीं, उनके कुल की मर्यादा को जीवन भर अक्षुण्ण बनाए रखने की सामर्थ्य सिवा अग्नि-देव के और किसी में नहीं; शिवाजी में भी नहीं। उसे और भी बहुत से काम हैं। और जीवन तो बहुत लंबा होता है।

शिवाजी—धन्य हैं राजपूत जाति की देवियाँ ! मुझे भी इसी

जाति की संतान होने का सौभाग्य प्राप्त है। यह महा-प्रकाश मैं इन्हीं जौहर की ज्वालाओं से पा सका हूँ जिससे मैं अमावस्या की काल-रात्रि में भी पथ-विचलित नहीं होता। अच्छा माँ! अब क्या करने से तुम्हारा दुःख कम हो सकता है?

केसरीसिंह की माँ—हमें देश भिजवा सको तो बड़ी दया हो।

शिवाजी—केवल इतना! वहाँ क्या करोगी?

केसरीसिंह की माँ—मज़दूरी करके पेट पालूँगी—और इस लड़की के पीले हाथ करके संसार से विदा ले लूँगी। (आँसू)

शिवाजी—(केसरीसिंह की माँ के चरण छूकर) माँ, दुखी न हो। शिवाजी की सारी सम्पत्ति तुम्हारी है। तुम्हें मैं सुरक्षित तुम्हारे गाँव भेजने का प्रबंध किए देता हूँ। यह तुच्छ भेंट मेरी बहन के लिए है। विवाह के अवसर पर यह दहेज में देना। (बहुमूल्य जवाहरात और आभूषण देते हैं) और माँ तुम्हें वहाँ कोई अर्थ-कष्ट न हो इसका भी प्रबंध मैं किए देता हूँ। नेताजी, इनकी यात्रा का प्रबंध कर दीजिए।

केसरीसिंह की माँ—तुम्हारी कीर्ति अमर हो, बेटा! इतिहास तुम्हारी वीरता और विजय के साथ-साथ तुम्हारी दया और उदारता पर भी श्रद्धा के फूल चढ़ावे!

(नेताजी का तथा केसरीसिंह की माँ और पुत्री का प्रस्थान)

शिवाजी—यदि कहीं राजपूत जाति को भी मैं अपने साथ ले सकता तो संसार देखता कि हमारी स्वराज्य-साधना किस शान और कितनी शीघ्रता से सफल हो सकती है!

मोरोपंत—शाइस्ताखाँ का कोई इलाज करना चाहिए, महाराज! उससे मैदान में लोहा लेना ज़रा कठिन है। उसके पास एक लाख की सुदृढ़ सेना, ४००० ऊँट, तथा गोला-बारूद की ५००० गाड़ियाँ हैं। एक पूरा शहर का शहर है।

शिवाजी—उसके लिए भवानी की आज्ञा मिल गई है। उसने मुझे बंदर लिखा था; कल वह जानेगा कि यह हनुमान का अवतार क्या चमत्कार दिखाता है!

मोरोपंत—फिर भी, आपने क्या सोचा है?

शिवाजी—वह पूना में मेरे ही लाल महल में ठहरा हुआ है, जैसे दादाजी कोंडदेव ने उसे उसके ही लिए बनवाया था। खाँ साहब कल जानेंगे कि शिवाजी के घर में ठहरना कैसा होता है!

मोरोपंत—आख़िर आपने क्या ठानी है?

शिवाजी—आजकल रमज़ान के दिन हैं। शाइस्ताखाँ की सेना दिन भर के रोज़े के बाद रात को खूब ठूँस-ठूँस कर खाकर गहरी नींद में सोती होगी। हम रात को ही शाइस्ताखाँ के कमरे में घुस कर उस पर आक्रमण करेंगे।

मोरोपंत—किंतु पूना में प्रवेश कैसे पाएँगे?

शिवाजी—एक बरात बनाकर हम शहर में घुस जायँगे!

मोरोपंत—मानलो हम वहाँ पहुँच भी गए और रात को आक्रमण भी कर दिया; पर यदि इस हो हल्ले में उसकी सेना जाग पड़ी तो क्या हमारा जीवित लौटना कठिन न हो जायगा?

शिवाजी—उसका भी उपाय सोच लिया है! कटराजघाट के

जंगल में बैलों के सींगों में और झाड़ियों में मशालें बाँधकर कुछ आदमी वहाँ नियुक्त कर देंगे। जैसे ही इधर हमारा काम होगा, वे लोग उधर उन्हें जलाकर भाग जावेंगे। शाइस्ताखाँ के सिपाही हमें उसी ओर जाते समझकर पीछा करेंगे, किंतु हम सिंहगढ़ की ओर के मार्ग से भाग आवेंगे। चलो, अब हमें सब तैयारी करनी चाहिए।

(सबका प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[पूना के लाल महल में शाइस्ताखाँ आराम कर रहा है। युवती बाँदियाँ पँखा कर रही हैं। एक बाँदी हाथ में सितार लिए गाना प्रारंभ करने की मुद्रा में बैठी है]

शाइस्ताखाँ—ज़िंदगी और ज़िंदादिली, इशरत और हुस्न, सब का राज़ एक दिल-कश तराने में छुपा होता है। खुदा ने गाना बना कर इनसान को कितनी बड़ी नियामत बख्शी है, इसका अंदाज़ा वही लगा सकते हैं, जो इसके शायक़ हैं। (बाँदी से) अच्छा, कोई अच्छा-सा गाना शुरू करो। हम मुग़लों के जैसी मौज मराठों को कहाँ नसीब! वे मनहूस, चट्टानों पर सोने वाले, इन बातों को क्या जानें। हाँ, तो गाओ। दिल को मस्त बना देने वाला गाना गाओ।

पहली बाँदी—(गाती है)

मेरे मन तुम क्यों शरमाते ?
साक़ी खड़ा हुआ मद लेकर,
पीने में तुम क्यों सकुचाते ?
कोयल गाती गीत निराले,
भौंरे पिला रहे रस-प्याले !
छवि पर हैं पतंग मतवाले,
तुम क्यों अपने अरमानों को प्यासे ही लेकर फिर जाते ?
मेरे मन तुम क्यों शरमाते ?
यह जीवन दो दिन का मेला,
भाग्यवान् इसमें हँस खेला,
रोया वह जो रहा अकेला,
मिलकर पीने और पिलानेवाले यौवन का फल पाते,
मेरे मन तुम क्यों शरमाते ?

(शाइस्ताख़ाँ को गाना सुनते-सुनते नींद आ जाती है)

दूसरी बाँदी—बस, अब रहने दे, ख़ाँसाहब सो गए। अब क़यामत भी उन्हें सुबह से पहले नहीं उठा सकती। चलो, अब हम भी सो जावें।

(गाने वाली बाँदी पास की दूसरी चारपाई पर सो जाती है, बाकी भी यत्र-तत्र लेट जाती हैं, थोड़ी ही देर में पीछे कुछ आहट होती है)

पहली बाँदी—यह खट-खट कैसी! बापरे बाप! मालूम होता है इस मुल्क में भूत भी बहुत हैं। (उठकर) खाँसाहब तो जैसे घोड़े बेच कर सो रहे हैं। ऐसे बेफिक्र हैं मानों यहाँ शिवाजी से लड़ने नहीं आए, बल्कि शादी करने आए हैं। ऐसे चैन से सो रहे हैं, जैसे बादशाह इन्हें सोने ही की तनख्वाह देते हैं। (शाइस्ताखाँ को झकझोरती है) उठिए खाँसाहब, उठिए। (दीवार की ईंटें खोदने की आवाज़ तेज़ होती है) अजी उठिए, कोई दीवार तोड़ रहा है।

शाइस्ताखाँ—(लेटे-लेटे ही) क्यों ख्वाहमख्वाह तंग करती हो? तुम औरतों की जात ही डरपोक है। (झटक कर) सोने दो।

(बाँदी फिर लेट जाती है, आवाज़ और बढ़ जाती है, बाँदी फिर उठकर शाइस्ताखाँ को हाथ से पकड़ कर ज़बरदस्ती उठा देती है। शिवाजी तथा उनके साथी भीतर घुस आते हैं। तमाम बाँदियाँ चौंक कर जाग पड़ती हैं।)

पहली बाँदी—भागिए, खाँसाहब ये दुश्मन अंदर..........

शाइस्ताखाँ—या खुदा! यह बंदर (चारपाई से कूद कर भागता है)

शिवाजी—हाँ, यह हनुमान का अवतार आ पहुँचा है। ठहरिए थोड़ा-सा प्रसाद लेते जाइए। माफ़ कीजिए, मैंने आपके आराम में थोड़ा सा खलल पहुँचाया।

(भागते हुए शाइस्ताखाँ पर शिवाजी तलवार फेंक कर मारते हैं; तलवार उठाने को शिवाजी का प्रस्थान और थोड़ी देर में तलवार और शाइस्ताखाँ का कटा हुआ अँगूठा लेकर प्रवेश)

शिवाजी—गरदन बच गई, सिर्फ अँगूठा हाथ लगा । मूज़ी निकल भागा । ख़ैर जायगा कहाँ ?

(नेपथ्य में 'खून, धोखा, खून, धोखा' की तुमुल ध्वनि)

एक मराठा सरदार—वह देखो शाइस्ताखाँ का लड़का आ रहा है ।

शिवाजी—उसकी मौत उसे यहाँ ला रही है ।

(शाइस्ताखाँ का लड़का आते ही शिवाजी पर आक्रमण करता है । शिवाजी वार बचा जाते हैं । फिर वार करके उसे मौत के घाट उतार देते हैं । इतने में एक बाँदी रोशनी बुझा देती है । अँधेरा हो जाता है)

शिवाजी—यह बड़ी मुश्किल हुई । इस बाँदी ने रोशनी बुझा कर सारा खेल खराब कर दिया । अब शाइस्ताखाँ को भागने का वक्त मिल जायगा । ख़ैर !

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—आगरा में दीवाने-ख़ास। तख्ते-ताऊस खाली है। दिलेरखाँ, जयसिंह, जसवंतसिंह तथा अन्य सरदार बैठे हैं]

दिलेरखाँ—(जसवंतसिंह से) कहिए राजा जसवंतसिंह जी, शिवाजी पर फ़तह पाकर आप लौट आए !

जसवंतसिंह—फ़तह और हार की बात तो शाइस्ताखाँ साहब जानें, जिन्होंने अँगूठा कटने का सारा गुस्सा जसवंतसिंह पर निकाला।

जयसिंह—कैसे ?

जसवंतसिंह—शिवाजी के हाथों अँगूठा कटा चुकने पर जब वे दुखी हो रहे थे, तो मैं उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने गया। पर उन्होंने उस सहानुभूति को व्यंग्य समझा। बोले, मैं तो समझता था कि राजा जसवंतसिंह पहले ही शिवाजी से लड़ते हुए मारे गए, लेकिन आप तो ज़िंदा हैं। इस ताने पर मेरा रोम-रोम जल उठा। जी चाहा कि शाइस्ताखाँ के सिर के अभी टुकड़े-टुकड़े कर दूँ, लेकिन किसी प्रकार ज़ब्त करके चुपचाप लौट आया।

दिलेरखाँ—और शाइस्ताखाँ ?

जसवंतसिंह—वे भी लौट आए हैं, पर अब वे शिवाजी के नाम से ही डरने लगे हैं। उन्हें आशंका होने लगी है कि यदि दक्खिन में रहेंगे तो अँगूठा ही नहीं सिर भी खोना पड़ेगा।

दिलेरखाँ—वाह भई वाह ! शाइस्ताखाँ ने तो मुग़ल बादशाहत का नाम ही रोशन कर दिया।

(औरंगज़ेब का प्रवेश)

[सब खड़े होते हैं औरंगज़ेब तख़्ते-ताऊस पर बैठता है]

औरंगज़ेब—राजा जसवन्तसिंहजी, मुझे आपसे यह उम्मीद नहीं थी। शाइस्ताखाँ को भी मैं ऐसा बेवकूफ न समझता था। एक लाख फौज और बेशुमार रुपया मुट्ठी भर मराठों को क़ाबू में लाने को काफ़ी नहीं हुआ !

जसवंतसिंह—जिस लश्कर के साथ, पूरा ज़नानख़ाना और ऐश-आराम की सारी चीज़ें जावें, वह उन मराठों से कैसे पार पा सकता है, जिनके लिए घोड़ों की पीठ ही मख़मली गद्दे हैं, चने ही राजसी भोजन हैं और तलवार ही अंकशायिनी सहचरी है ? मुग़ल सेना ज़नानख़ानों की हिफ़ाज़त करे या मराठों से लड़े ?

औरंगज़ेब--अपनी बुज़दिली को आप······

जसवंतसिंह—बादशाह सलामत, जसवन्तसिंह ऐसे शब्द नहीं सुन सकता। (तलवार पर हाथ रखता है) आप बादशाह हैं इसीलिए मैं कुछ न कह कर चुपचाप चला जाता हूँ। देखूँगा, आप दक्खिन में जाकर कौन-सा तीर मारते हैं !

(जसवन्तसिंह का प्रस्थान)

औरंगजेब—बेवकूफ़ राजपूत !

(पहरेदार का प्रवेश)

पहरेदार—(कोर्निश करके) सिपहसालार शाइस्ताखाँ साहब तशरीफ़ लाए हैं।

औरंगज़ेब—उनसे कह दो कि वे अपना काला मुँह यहाँ न दिखलावें। उन्हें बंगाल का सूबेदार बनाया जाता है, जहाँ बुख़ार उन्हें जिंदा ही क़ब्र में पहुँचा देगा।

(पहरेदार का प्रस्थान तथा उलटे पाँवों फिर प्रवेश)

पहरेदार—(कोर्निश करके) जहाँपनाह, सूरत से एक आदमी आया है।

औरंगज़ेब—उसे यहाँ भेज दो।

(पहरेदार का प्रस्थान)

औरंगज़ेब—मालूम होता है, उस बाग़ी का सर कुचलने के लिए खुद मुझे दक्खिन की तरफ़ कूच करना पड़ेगा; लेकिन उधर काश्मीर में भी बग़ावत खड़ी हो रही है। उधर की फ़िक्र करना भी लाज़िमी है। क्या किया जाय, कुछ समझ में नहीं आता।

जयसिंह—आप इतने निराश न हों। अभी हम लोगों की तलवारों में जंग नहीं लगा है।

दिलेरखाँ—मराठों के पहाड़ी मुल्क का पानी पीने की ख्वाहिश तो मुझे भी है। शिवाजी, वाक़ई बहादुर आदमी है। बहादुर आदमी की दोस्ती और दुश्मनी दोनों फ़ख्र की चीज़ होती हैं।

(आगंतुक प्रवेश करके बंदगी करता है)

औरंगज़ेब—कहो, सूरत की क्या ख़बर है ?

आगंतुक—जहाँपनाह, सूरत की तो सूरत ही बिगड़ गई।

औरंगज़ेब—क्यों ?

आगंतुक—शिवाजी ने उसे लूट लिया। जिस सूरत की सम्पत्ति से कुबेर का ऐश्वर्य ईर्षा करता था, जो संसार के समृद्धतम व्यापारिक नगरों में श्रेष्ठ था, उसकी शिवाजी ने शक्ल ही तबदील कर दी। संसार के सब से धनी व्यापारी बोहरजी का गगनचुंबी महल जला कर राख कर दिया गया।

औरंगजेब—हूँ ?.........क्या उसने वहाँ की रियाया को क़त्ल भी किया ?

आगंतुक—नहीं जहाँपनाह, उसने ढिंढोरा पिटवा दिया कि वह किसी की जान लेने नहीं आया, औरंगज़ेब ने उसके मुल्क पर जो हमला किया था, उसी का बदला लेने आया है। उसने ग़रीबों के जान-माल को भी हाथ नहीं लगाया, सिर्फ धनी-व्यापारियों को लूटा है। इस लूट में उसे एक करोड़ से अधिक धन प्राप्त हुआ है। २८ सेर मोती और जवाहरात तो अकेले बोहरजी बोहरे के यहाँ से उसे प्राप्त हुए।

औरंगजेब—अब और नहीं सहा जा सकता। आज मुग़ल सल्तनत की इज्ज़त ही नहीं हस्ती भी ख़तरे में है। मेरे जीते-जी दुनियाँ की सबसे बड़ी सल्तनत की ऐसी बेइज्ज़ती ! औरंगज़ेब मिट्टी का पुतला नहीं है। वह लड़ाई के मैदान और राजनीति की

चालबाज़ी, दोनों में दुनिया की बड़ी से बड़ी हस्ती का मुक़ाबला कर सकता है।

एक सरदार—इसमें क्या शक है?

औरंगज़ेब—राजा जयसिंह जी, मैं समझता हूँ, शिवाजी को क़ाबू में लाने का काम आप ही कर सकते हैं।

जयसिंह—मुझसे जो कुछ हो सकेगा, उसे करने में मैं कुछ भी उठा न रखूँगा। बारह वर्ष के अनाथ बालक की भाँति मैं मुग़ल-दरबार में आया था। बचपन से बादशाह शाहजहाँ के इशारे पर मध्यएशिया के बलख़ नगर से बंगाल के मुंगेर तक इस जयसिंह की तलवार सफलतापूर्वक चली है। आज तक इस तलवार को अपयश नहीं मिला।

औरंगज़ेब—इसीलिए तो जहाँ शाइस्ताखाँ की दाल नहीं गली, वहाँ मैं आपको भेज रहा हूँ।

जयसिंह—यह आपकी कृपा है।

औरंगजेब—आपके साथ बहादुर दिलेरखाँ, दाऊदखाँ कुरेशी, राजा रायसिंह सीसोदिया, इहतिशामखाँ शेखज़ादा, कुबाद ख़ाँ, राजा सुजानसिंह बुंदेला तथा आपके साहबज़ादे कीरतसिंह, मय अपनी-अपनी फ़ौजों के जावेंगे। मैं चाहता हूँ दक्खिन की बग़ावत की लहर हमेशा के लिए नेस्तनाबूद हो जावे। मराठों के गाँवों की दौलत लूट कर—उनमें आग लगा दो। उनके तमाम मुल्क को मरघट बना दो। दुनियाँ देखे कि मुग़लों के ख़िलाफ़ खड़े होने का क्या नतीजा है!

जयसिंह—बंदा, अपना काम करने को तैयार है, लेकिन काम इतना आसान नहीं है, जितना आप समझते हैं। इसके लिए मुझे कुछ अधिकारों की ज़रूरत है।

औरंगजेब—कहिए, आपको क्या क्या चाहिए ?

जयसिंह—दक्खिन पर मेरा फ़ौजी शासन होगा ? वहाँ के सूबेदार शाहज़ादे मुअज़्ज़म को भी मेरी मातहती क़बूल करनी होगी। मैं न तो आपके हुक्म का इंतज़ार करूँगा, और न शाहज़ादे साहब को अपनी राय के ख़िलाफ़ उँगली उठाने दूँगा।

औरंगज़ेब—यह तो बेजा है।

जयसिंह—तो मैं आपको सफलता का विश्वास नहीं दिला सकता। फ़ौज और मुल्की इंतज़ाम दोनों पर जब तक मेरा अधिकार न होगा, शिवाजी जैसे चालाक और वीर पुरुष से लड़ कर विजय पाना मेरे बस की बात नहीं। व्यर्थ ही बुढ़ापे में कलंक का टीका लगवाने से फ़ायदा !

औरंगज़ेब—आपकी शर्तें मुझे मंजूर हैं। लेकिन एक शर्त है, शिवाजी ने कहा था कि औरंगज़ेब के दरबार में उसकी छाया भी नहीं आ सकती, मैं उसका सर तख़्तेताऊस के आगे झुकवाना चाहता हूँ।

जयसिंह—यह भी हो जायगा।

औरंगज़ेब—तो कूच की तैयारी कीजिए।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान--रायगढ़ । शिवाजी और स्वामी रामदास घूमते हुए आते हैं]

शिवाजी—यह गढ़ पूज्य पिताजी की आज्ञा से बनाया गया है। जब वे बीजापुर से संधि का प्रस्ताव लेकर आए थे, तब मैंने उन्हें अपने सब गढ़ों का निरीक्षण कराया था। यहाँ आकर और अगणित पहाड़ियों के समुद्र के बीच में इस आकाश-चुंबी गिरि-शिखर को देखकर, वे जैसे स्वप्न से जाग पड़े और बोले यही स्थान तुम्हारी राजधानी बनने योग्य है। अरक्षित अवस्था में भी इस पर चढ़ना यम को निमन्त्रण देना है। यदि इस पर गढ़ बनाया जाय तो वह सदा अजेय रहेगा।

रामदास—वास्तव में यह स्थान ऐसा ही है। शाहजी की दृष्टि इस बात को देखने से कैसे चूक सकती थी ?

शिवाजी—वह सामने एक चोर दरवाज़ा है। इसके पीछे एक कहानी है।

रामदास—वह क्या ?

शिवाजी—जब यह गढ़ बन कर तैयार हुआ तो मैंने दरबार

किया और घोषणा की कि जो इस गढ़ में बिना दरवाज़े के प्रवेश करेगा उसे १०० पगोड़ा पुरस्कार दिया जायगा। एक महार ने जब इस बात का बीड़ा उठाया तो हम लोगों ने उसका उपहास किया, किंतु यह स्थान उसकी बचपन की क्रीड़ा-भूमि था। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि वह हाथ में झंडा लिये हुए एक नए ही मार्ग से चला आ रहा है। अब वह मार्ग बंद करा दिया गया है।

रामदास—तभी दिल्ली के सैनिक इन पहाड़ियों के प्रदेश में युद्ध करने से डरते हैं। उन्हें इस बात की सदा आशंका ही बनी रहती है कि मराठे वीर कब कहाँ से निकल कर उनको काट डालेंगे।

शिवाजी—और वह देखिए उस तरफ़ हीराकनी बुर्ज बनवाया जा रहा है।

रामदास—हीराकनी ?

शिवाजी—जी हाँ, हीराकनी एक ग्वालिन का नाम है। एक संध्या को वह दूध बेचने क़िले में आई। उसे जाते समय देर होगई और पहरेदार ने दरवाज़ा न खोला। उसके घर नवजात शिशु था—और थी साक्षात् चंडिका-स्वरूपिणी सास। यदि उस रात वह घर न पहुँचती तो उसकी सास उसे खा ही जाती, और बच्चे का क्या हाल होता, यह तो सोचने ही की बात है। उसने जान की परवाह न की और इन चट्टानों पर से खिसकती-खिसकती नीचे उतर गई। तब मालूम हुआ कि एक ऐसा स्थान और भी

है, जहाँ से शत्रु प्रवेश कर सकता है। उस जगह वह बुर्ज बना दिया गया है। उस ग्वालिन का नाम भी इसके साथ अमर हो गया है।

रामदास—धन्य हैं महाराष्ट्र की कृषक-बालाएँ! भैया, जिस देश की स्त्रियों में इतना साहस है, वह देश इतनी पीढ़ियों से गुलाम बना रहे, यह आश्चर्य की बात है!

शिवाजी—गुरुदेव, इस गढ़ के बनाने में बहुत समय और द्रव्य खर्च हुआ है। मुझे तो इस बात की खुशी है कि मैं इतने गरीब लोगों के जीवन-निर्वाह के साधन जुटाने का निमित्त बन सका।

रामदास—हूँ! ऐसी बात है! (सामने पड़े एक पत्थर की ओर इशारा करके) अच्छा, शिवाजी इसे तोड़ो तो।

शिवाजी—गुरुदेव, मैं आपका तात्पर्य नहीं समझा।

रामदास—तुम इसे तोड़ो तो!

(उस पत्थर को तोड़ते हैं, उसमें से एक मेंढक निकलता है)

रामदास—क्यों शिवाजी, इस मेंढक की जीवन-रक्षा करने के लिए इस शिला के अंदर पोल बनवाकर तुम्हीं ने पानी भरवा दिया था न? तब तो तुम बड़े सामर्थ्यवान् हो!

शिवाजी—(पैरों पर गिर कर) क्षमा कीजिए गुरुदेव! मेरा अभिमान मिथ्या था। मैंने यह सोचकर झूठा गर्व किया कि इतने श्रमियों को काम पर लगाकर मैंने उन पर उपकार किया है। यह मेरा अपराध है। वास्तव में सब की रक्षा वही सर्वशक्तिमान्

परमात्मा करता है, जिसने इस शिला के भीतर भी इस मेंढक की जीवन-रक्षा का प्रबंध कर रखा था।

रामदास—उठो भाई, (उठाते हैं) मनुष्य को ऐसा भ्रम हो ही जाता है।

शिवाजी—किंतु, यह गर्व मेरी साधना में बाधक होगा। मुझे भय है कि कहीं मैं अपने जीते हुए देशों तथा हस्तगत की हुई संपत्ति पर अपना स्वत्व न समझने लगूँ। मैं अपना संपूर्ण राज्य, संपूर्ण संपत्ति आत्मशुद्धि के हेतु आपके चरणों में अर्पित करता हूँ।

रामदास—शिव! शिव! मुझ जैसा संन्यासी राज्य और संपत्ति लेकर क्या करेगा? भगवान् की भक्ति ही संन्यासी की संपत्ति है और जन-सेवा ही उसका राज्य। तुम्हारा राज्य और तुम्हारी संपत्ति तुम्हीं को सँभालनी चाहिए।

शिवाजी—नहीं गुरुदेव, मैं आपकी यह बात नहीं मानूँगा। यदि आप स्वयं अपने हाथ में शासन-सूत्र न लेना चाहें तो मुझे अपनी पादुकाएँ दे दीजिए। जिस भाँति भरत ने राम की अनुपस्थिति में उनकी पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर उनकी ओर से राज्य किया था, उसी भाँति मैं भी आपके संन्यास की रक्षा करते हुए लोक-सेवा का यत्न करूँगा। आज से महाराष्ट्र का झंडा भी भगवे रंग का रहेगा, क्योंकि अब यह राज्य राजा शिवाजी का नहीं भगवे वस्त्र धारण करने वाले संन्यासी रामदास का है।

रामदास—तुम्हारी भावना को आघात पहुँचाना उचित नहीं, केवल इसलिए ये पादुकाएँ दिए देता हूँ। (पादुकाएँ शिवाजी को देते

हैं, शिवाजी पादुकाएँ लेकर मस्तक से लगाते हैं) असल में भैया अन्तर् की आँखें खुली रखो। यह राज्य जनता की धरोहर है। तुम्हारे सिर पर राजमुकुट कहो या नेतृत्व का चिह्न कहो, जो कुछ है, जनता-जनार्दन के विश्वास का उपहार है। किसी भी क्षण जनता यह तुमसे वापस माँग सकती है। विदेशी राज्य के बदले, जनता, उच्छृंखल शिवाजी का एकतन्त्र स्वामित्व नहीं चाहती। वह तो उस शासन की इच्छुक है जिसमें राजा अपने को प्रजा की धरोहर का रक्षक और जनता का सेवक समझे। जिस दिन तुम या तुम्हारी अगली पीढ़ियाँ स्वामित्व और शासन को अपना उत्तर-दायित्व हीन और जन्म-सिद्ध अधिकार मानने लगेंगी, स्वराज्य का गला घुट जायगा, स्वतंत्रता की साधना उपहास का विषय बन जायगी। राष्ट्र फिर अनेक सरदारों की महत्त्वाकाँक्षा का क्रीड़ाक्षेत्र, पारस्परिक युद्ध से जर्जर और विदेशी शक्ति का मुहताज बन जायगा।

शिवाजी—आप सत्य कहते हैं गुरुदेव ! मुझे बल दीजिए कि मैं मानवीय दुर्बलताओं से ऊपर उठ सकूँ। मैं 'शिवाजी की जय' के नारे सुन कर इतना पुलकित न हो जाऊँ कि दीन-दुखियों की आवाज़ न सुन सकूँ।

रामदास—वत्स ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। अब मैं जाता हूँ।

(एक ओर से स्वामी रामदास का और दूसरी ओर से शिवाजी का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—सासवड़ । जयसिंह का शिविर । जयसिंह अकेला]

जयसिंह--औरंगज़ेब ! काश कि तुम मनुष्य को मनुष्य समझ सकते ! मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि अविश्वास और संदेह, तुम्हारे ये दो भीषण दुर्गुण, मुग़ल-साम्राज्य का विनाश करके छोड़ेंगे । तुम मेरा भी विश्वास न कर सके; उस जयसिंह का, जिसकी तलवार की धार ने मुग़ल-साम्राज्य का भाग्य लिखा है । दिलेरखाँ को मेरे साथ भेज दिया, सिर्फ इस लिए कि हिंदू राजा जयसिंह शिवाजी से न मिल जावे । छिः औरंगज़ेब ! तुमने राजपूत जाति को नहीं पहचाना । दुनियाँ जानती है कि इस महान् मुग़ल-साम्राज्य का विस्तार मानसिंह की वीरता, जसवंतसिंह के शौर्य और जयसिंह के अथक परिश्रम ही का परिणाम है और आज जब फिर मुग़ल साम्राज्य पर ज़बरदस्त संकट आया है, तब जयसिंह ही उसे बचाने में समर्थ होगा । किंतु, अविश्वास, संदेह और कपट ! ओह, यह अपमान असह्य है, जी चाहता है—जी चाहता है··· नहीं-नहीं ।... राजपूत अपने वचन से कदापि विमुख न होगा ।

(दिलेरखाँ का नंगे सिर प्रवेश)

दिलेर—आदाब राजा साहब !

जयसिंह—आइए दिलेरखाँ जी, यह क्या ! सिर की पगड़ी क्या हुई ?

This book is worth ...

दिलेर—अभी तक सर कायम है, यही ग़नीमत है।

जयसिंह—क्यों-क्यों ? क्या बात हुई ?

दिलेर—जिस दिलेरखाँ की तलवार की सारे एशिया में धूम है, उसे मराठों के इस पहाड़ी मुल्क से नाकामयाब होकर जाना पड़ेगा। अफ़सोस, अभी तक पुरंधर का क़िला न लिया जा सका। वह हमारे हाथ आते-आते......

जयसिंह—लेकिन पगड़ी क्या हुई ?

दिलेर—अब पगड़ी पहन कर क्या होगा ? बेइज्ज़त लोग किस मुँह से पगड़ी पहन सकते हैं ?

जयसिंह—अभी तक तो बेइज्ज़ती का कोई सबब नज़र नहीं आया। शिवाजी से जिनका ज़रा भी मनमुटाव था, उन सब का सहयोग हमें मिल रहा है। अफ़ज़ल खाँ का लड़का फ़ज़ल मोहम्मद, जंजीरा के सिद्दी, जावली के मोरे, पश्चिमी किनारों के फिरंगी जवाहर और रामनगर के राजा तथा कर्नाटक के ज़मींदार सभी आज अपने साथ हैं ! यकीन रखिए, दिलेरखाँ जी, शिवाजी जयसिंह से पार नहीं पा सकता।

दिलेर—शायद दो चालाक भेड़ियों का मुकाबला है ! दोनों में से कौन कम है और कौन ज्यादा यह नहीं कहा जा सकता।

जयसिंह—दौलत और जागीर का लोभ देकर शिवाजी के सरदारों को भी अपने काबू में लाने की कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन हाँ—हाँ—आपकी पगड़ी ?

दिलेर—फिर पगड़ी ! बार-बार पूछ कर क्या करेंगे। यह

समझिए कि मराठों की बहादुरी को सिजदा करने में पगड़ी खो दी। राजा साहब! वह नज़ारा भूले नहीं भूलता। हमने पुरंधर की नीचे वाली दीवारें यानी वज्रगढ़ को बारूद से उड़ा दिया। हमने समझा बस अब किला हमारे हाथ आ गया। ऐसा जान पड़ा मानों क़िले में हमारा मुक़ाबला करनेवाला कोई है ही नहीं। फौजें बढ़ीं। मगर थोड़ी ही देर में एक बाढ़ की तरह मुट्ठी भर मराठे हमारी फ़ौज़ पर टूट पड़े और इस तरह मार-काट मचाने लगे, गोया खेत काट रहे हों। बात की बात में हमारी फ़ौज के पैर उखड़ गए।

जयसिंह—अच्छा, तो शायद आपकी पगड़ी भी उसी बाढ़ में बह गई?

दिलेरखाँ—जी नहीं, उस बाढ़ में नहीं वही। आप सुनते चलिए। हाँ, तो, मैंने भागने वालों को ललकारा और नई फ़ौज़ हमले के लिए भेजी। लेकिन वाह रे क़िलेदार मुरारबाजी प्रभु! उसकी बहादुरी देखकर मैं दंग रह गया। जी चाहा कि लड़ना छोड़कर उसके पैर चूम लूँ।

जयसिंह—वीर पुरुष का आदर करना ऊँचे चरित्र का चिह्न है। दिलेरखाँ की दिलेरी के साथ-साथ उनका ऊँचा चरित्र संसार में अमर रहेगा। अच्छा, फिर क्या हुआ?

दिलेरखाँ—वह हैरत अंगेज़ नज़ारा था। मुग़लों के हज़ारों सिपाहियों के बीच से तीर की तरह निकल कर बिना किसी रुकावट को माने, हाथी पर बैठकर, मुरारबाजी प्रभु मेरे सामने

आकर खड़ा होगया। उसने मुझे लड़ने के लिए ललकारा, पर मैंने कहा—ऐसे बहादुर आदमी को दुनिया से रवाना कर देने के बदले मैं उसे मुग़ल-दरबार में बहुत ऊँचा मनसब दिला सकता हूँ। मुरारजी, अब भी सोचो।

जयसिंह—इस पर उसने क्या कहा ?

दिलेर—उसने जो कुछ कहा, उससे मेरा दिल बाग़-बाग़ हो गया, उसने कहा—सुनिए जयसिंह जी—उस बहादुर ने दुनिया के शाहों की शान को शर्मिन्दा करते हुए कहा—"अपने मुल्क की आज़ादी के लिए जान दे देना सबसे बड़ा मनसब है।" और यह कह कर उसने मुझ पर हमला किया। आख़िर मेरे एक तीर से उस बहादुर की रूह दुनिया से चल बसी।

जयसिंह—लेकिन आपकी पगड़ी……… !

दिलेरखाँ—पगड़ी की बात भी कहता हूँ! मुरारजी के मर जाने पर मुग़लों में जोश का दरिया उमड़ पड़ा! हमने बड़े ज़ोरों के साथ पुरंधर पर हमला किया, लेकिन यह तो जादू का मुल्क है; न जाने कहाँ से मराठों की नई फ़ौज आगई और सारा बना-बनाया खेल बिगड़ गया। गुस्से में आकर मैंने अपनी पगड़ी उतार कर फेंक दी और क़सम खाई कि जब तक पुरंधर को न जीत लूँगा, तब तक पगड़ी न पहनूँगा!

जयसिंह—लेकिन, मैं समझता हूँ कि इस दशा में हमें शिवाजी से सुलह कर लेनी चाहिए।

दिलेर—सुलह! नहीं यह नामुमकिन है। बहादुरों से लड़ने

का मौक़ा बार-बार नहीं मिलता! इस मामले में दिलेरखाँ आपका कहना नहीं मान सकता।

(प्रस्थान)

जयसिंह—जयसिंह की निराशा से ज़रा भी जान-पहचान नहीं है। लेकिन यह भयानक महाराष्ट्र-प्रदेश! एकदम अद्भुत है! शाइस्ताखाँ के पुत्र और अफ़ज़लखाँ की स्वर्गीय आत्माएँ! ऐसा ज्ञात होता है मानों वे रात-दिन आँखों के आगे नाचती रहती हैं। परिस्थितियों का रंग-ढंग देखते हुए शिवाजी का संधि का प्रस्ताव मान लेने ही में बुद्धिमानी नज़र आती है। औरंगज़ेब ने भी कहा था कि—शिवाजी को एकबार मुग़ल दरबार में हाज़िर कर दो, बस मैं यही चाहता हूँ। उनके अनुरोध की रक्षा का अवसर अनायास आ पहुँचा है। इसे खो देना मूर्खता होगी।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

(स्थान—मुग़ल-शिविर के निकट का एक मार्ग। एक मुसलमान और एक राजपूत सैनिक का बातें करते हुए प्रवेश)

मुस॰सैनिक—यार तारासिंह, अबकी दफ़ा तो बेढब आ फँसे।

दिलबस्तगी का कोई सामान, ग़म ग़लत करने का कोई ज़रिया ही नहीं। मनहूसों और खुश्कों की ज़िंदगी भी कोई ज़िंदगी है ? पिछली दफ़ा जब शाइस्ताखाँ साहब के साथ आए थे, तो वह-वह लुत्फ़ उठाए कि ताज़िंदगी याद रहेंगे। भई, सिपहसालार हो तो ऐसा हो; खुद भी गुलछर्रे उड़ाए और सिपाहियों को भी मज़े लूटने दे। एक ये साहबान हैं; बस दिन-रात सिर्फ़ जंग से काम, न खुद घड़ी भर चैन लें और न बेचारे सिपाहियों को आराम मयस्सर होने दें।

राज०सैनिक—भई मसीदखाँ, सबको अपनी-अपनी पड़ी है। राजा जयसिंह जी और दिलेरखाँ साहब, दोनों मुग़ल-साम्राज्य के सबसे सफल सेनापति हैं। दोनों चारों ओर से बेशुमार नेक-नामी लूटना चाहते है। इसी से दिन-रात हार-जीत के ग़म में रहते हैं।

मसीदखाँ—यह हार-जीत तो यार लगी ही हुई है। अगर इसकी धुन में खून खुश्क करते रहें, तो सिपाही का पेशा न हो, बवाले-जान हो जाय। आखिर इनसान की मुट्ठी भर हड्डियों और दो-चार गज़ खाल के बीच खून की दस-बीस मशकें तो भरी ही नहीं होतीं। फिर इस फ़य्याज़ी से कैसे काम चल सकता है। ईं जानिब तो दिल्ली छोड़ते वक़्त अपनी बीबी को अच्छी तरह आँखों में भर लेते हैं। फिर मैदाने-जंग में हमें उसके सिवा कुछ नज़र ही नहीं आता। सब से पिछली भेड़ की तरह आँखें बंद किए दुश्मन की तरफ़ तलवार चलाते रहते हैं। जब बगलवाला कहता

है 'वाह,' तब समझते हैं कि हम भी वह बहादुर हैं जो कुछ तीर मार लेते हैं, और जब वह कहता है 'आह', तब सोचते हैं कि दुश्मनों की तरफ भी कुछ दिलेर लोग मौजूद हैं। इससे ज्यादा उलझन में पड़ना हमें फ़िज़ूल मालूम होता है।

तारासिंह—अपने सिर के कटने का हाल भी शायद आप को बगल वाले की 'आह' से ही मालूम होगा। क्यों न ?

मसीदखाँ—अजी सर को कटने कौन देता है ? एक हाथ से तलवार चलती रहती है और दूसरा हाथ सर पर बना रहता है। वह बर वक्त टटोल कर मालूम करता रहता है कि सर मौजूद है या ग़ायब। और फिर यकायक सर कटने की नौबत आ ही कैसे सकती है ? सब के ऊपर हमारा हाथ रहता है, उसके नीचे पगड़ी, उसके नीचे कुलाह और सबके नीचे बाल। तब कहीं जा कर सर की बारी आ सकती है। तब तक क्या हमारी टाँगों को कोई ग़ैरत, कोई रहम ही न आएगा ? क्या वे हमें लाद कर कहीं का रास्ता नहीं नाप सकतीं ?

तारासिंह—क्यों नहीं ? लेकिन दोस्त ! सच बताओ, क्या तुम हमेशा अपनी बीबी ही की याद में रहते हो ?

मसीदखाँ—बीबी की याद में ! अरे म्याँ, कह तो दिया, बीबी की शक्ल हमेशा हमारी आँखों में रहती है। और आँखें हमेशा हमारे साथ रहती हैं। फिर क्या है—

"जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है।"

हाँ, अगर किसी मनहूस सिपहसालार के चंगुल में आ फँसे

और दिल बहलाने का कोई सामान ही मयस्सर न हुआ तो फिर लाचारी है। उस हालत में बीबी को रोज़ रात को एक ख़त लिख कर अपने सिरहाने रखकर सो जाते हैं। उधर वह हमें दिन में दो दफ़ा ख़त लिखा ही करती है। बस दोनों तरफ़ दो बड़े दफ्तर तैयार होते रहते हैं। जब फ़तह या शिकस्त लेकर घर लौटते हैं, तो दोनों ही हालतों में बीबी खुदा को दुआएँ देती है कि हमारा दीदार नसीब तो हुआ। फिर ख़तों के दफ्तर बदले जाते हैं। उनसे महीनों जो दिल्लगी रहती है, उससे जंग के यानी हिज्र के दिनों की याद भी भूल जाती है।

तारा०—तब तो दोस्त, तुम बड़े भाग्यवान् हो। यहाँ जब से जयपुर छोड़ा, कभी युद्ध से छुट्टी ही नहीं मिली। जब विजय प्राप्त करते हैं, तो दूसरी विजय के लिए दिल बेचैन हो उठता है और जब पराजित होते हैं, तो ठकुरानी की लाल-लाल आँखें याद आ जाती हैं। ठेठ गाँव की है वह। सुना है, पराजित पति के लिए उसके गाँव में औरतें सीधा झाड़ू तैयार रखा करती हैं। फिर घर जायँ तो किस हिम्मत पर ?

मसीदखाँ—वाक़ई यार तुम बड़े बदनसीब हो। अजीब बेदर्द औरत के पाले पड़े हो। जीते हुए के लिए तो दुनिया में हर राह खुली रहती है, मगर हारे हुए का तो सिर्फ एक ही ठिकाना हुआ करता है—बीबी के दामन की पनाह ! अगर उसके भी लाले पड़ गए, तो लानत है ऐसी शादी पर। इस से तो ख़ाना-बदोशी ही अच्छी। ईंजानिब तो अपनी हर एक बीबी से—खुदा के फ़ज़ल से

हम अब तक तीन बीबियों को हँसी-खुशी जन्नत का रास्ता दिखा चुके हैं—शादी के पहले यह पक्का वादा करा लेते हैं कि हमारी हार-जीत पर न जायँगी। वरना, जनाब यहाँ तो सिपाही का पेशा ही ठहरा और बिला बीबी बने रहने की भी आदत नहीं। बस अगर रोज़-रोज़ कीं टाँय-टाँय पीछे लग गई तो कहीं के न रहे। और फिर झाड़ू! अल्लाह तौबा, अल्लाह तौबा!

तारा०—मगर, दोस्त, यहाँ तो ठकुरानी सचमुच बेढब मिली है। शादी की रात ही से उसने कहना शुरू कर दिया कि अगर तुम लड़ाई में मारे गए तो मैं तुम्हारे नाम पर हँसते-हँसते सती हो जाऊँगी, पर यदि रण से पीठ दिखा कर यहाँ आए, तो...

मसीद०—पीठ पर झाड़ू जमाऊँगी। क्यों न? लाहौल बिला क़ूबत! ईंजानिब तो ऐसी बीबी का ज़िंदगी भर भूलकर भी नाम न लें। बीबी न हुई, बला हुई; ज़िंदगी न हुई, आफ़त हुई। तभी यार, तुम राजपूतों पर दिन-रात जंग का भूत सवार रहता है। सदाबहार के फूल की तरह हार और जीत में यकसाँ खिला रहने वाला चाँद-सा मुखड़ा जिस के लिए दिन-रात आँखें बिछाए रहता हो, उसी की तबीयत घर लौटने को मचल सकती है, उसी के दिल में किसी की याद आने पर गुदगुदी हो सकती है। मगर तुम लोगों के दिल की जगह तो शायद खुदा ने लोहे का एक-एक टुकड़ा रख दिया है। लोहे के टुकड़े को खींचने को भी मक़नातीस चहिए, झाड़ू तो किसी भी हालत में किसी को अपनी तरफ़ नहीं खींच सकता। यही वजह है कि तुम लोगों का लोहे का दिल लोहे

के हथियारों की अदा पर ही मैदाने जंग में फ़िदा होता रहता है।

तारा०—मगर यार क्या करें, ठकुरानी की तेजस्वी मूर्ति में कुछ ऐसा जादू है कि वह दिल से एक क्षण के लिए भी दूर नहीं होती। इच्छा होती है कि युद्ध में ऐसी कीर्ति प्राप्त करें जिसे सुन कर ठकुरानी फूली न समाय और जिस दिन हम घर पहुँचें, हमारी घी के चिराग़ों से आरती उतारे।

मसीद०—मगर, आसार तो कुछ और ही नज़र आते हैं। तुम्हारे घर पहुँचने के पहले यह ज़्यादा मुमकिन है कि तुम्हारी मौत की ख़बर वहाँ पहुँचे।

तारा०—तो क्या हानि है, ठकुरानी तो फिर भी फूली न समाएगी।

मसीद खाँ—धत्तेरे की ! बीबी न हुई, आफ़त हुई। शौहर की मौत पर खुशियाँ मनाना ! यार, तुम राजपूत लोग भी अजीब शै हो ! और तुम से भी अजीब ये मराठे देखने में आए। तुम्हारे कहीं कोई घर-दार तो है, मगर ये लोग तो ऐसे फक्कड़ हैं कि अपने घोड़े की पीठ को ही अपनी दुनिया समझते हैं और राह चलते भाले पर भुट्टे भून खाने को ही अपनी ग़िज़ा। हज़रते ऊँट वाक़ई बड़े ऊँचे थे, मगर अब वह पहाड़ के नीचे आए हैं। देखें कैसी क्या निबटती है ? ईजानिब के तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। न हार का ग़म, न जीत की खुशी। जब तक यहाँ हैं,तलवार चलाने का फ़र्ज़ अदा कर रहे हैं। अगर यहाँ से जीत कर वापस गए तो बीवी

मुबारिकबादियों से मँढ़ देगी, और अगर हार कर गए तो हमें अपने दामन में छुपा कर खुदा का शुक्र अदा करेगी कि सालों का पाला-पोसा यह सर सलामत तो रहा। हः! हः! हः! अच्छा अब चलें बहुत देर हो गई।

(दोनों का प्रस्थाम)

[पट-परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

[स्थान—सासबड़ में राजा जयसिंह का खास शिविर।
शिवाजी और राजा जयसिंह बात-चीत करते हुए
प्रवेश करते हैं]

शिवाजी—महाराज जयसिंह जी, आपके प्रति मेरा आकर्षण अत्यंत स्वाभाविक है। आपने जहाँ उच्च राजपूत-कुल को भूषित किया है, वहाँ मुझे भी एक अकिंचन सीसौदिया वंशज होने का अभिमान है। आपके उदार हाथों में अपने प्राण और अपने जीवन के समस्त स्वप्नों को सौंप देने में मुझे कोई संकोच नहीं होता।

जयसिंह—महाराज शिवाजी, यह विश्वास आपके उदार हृदय के सर्वथा अनुकूल है। मैं भी आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप मुझे उतने ही प्रिय हैं जितना कि मेरा पुत्र रामसिंह। मैं आपको किसी संकट में नहीं डालूँगा।

शिवाजी—इसमें मुझे संदेह हो ही कैसे सकता है! अन्य मुग़ल-सेनापतियों के साथ मैंने जो व्यवहार किया था, वैसा मैं आप के साथ कदापि नहीं कर सकता। आज मेरे हृदय में तृप्ति की हिलोरें उठ रही हैं। आज आपके दर्शन प्राप्त कर मैंने ऐसा अनिर्वचनीय आनंद पाया है, मानों मैं अपने पिता के स्नेह में स्नान कर रहा हूँ!

जयसिंह—यह आपकी महत्ता है, शिवाजी! अच्छा, तो फिर यह समझा जाय कि आपको मेरा प्रस्ताव स्वीकार है! आप यही चाहते हैं कि रायगढ़ सहित १२ गढ़ों तथा कोंकण प्रदेश पर आपका अधिकार मान लिया जाय, लेकिन इसके बदले में आप दो करोड़ रुपया मुग़लशाही को तेरह वार्षिक किश्तों में दें। इन माँगों को बादशाह से मंजूर कराने का बीड़ा मैं उठाता हूँ, लेकिन आपको एक बार मुग़ल दरबार में हाज़िर तो होना ही चाहिए।

शिवाजो—आपकी आज्ञा से मैं मौत के मुँह में भी जा सकता हूँ, बात सिर्फ इतनी है कि उससे मेरा स्वप्न अधूरा ही रह जायगा। जब आपने मुझे अपना पुत्र कहकर पुकारा है तो फिर हम दोनों के बीच गोपन का आवरण क्यों हो? मैं आपको स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि मुझे व्यक्तिगत रूप से राज्य नहीं चाहिए, धन, ऐश्वर्य नहीं चाहिए, सुकीर्ति भी नहीं चाहिए। मैं तो माँ—भारत—को दीन-दुखी देखकर व्यथित हूँ। मैं उसे स्वाधीन देखना चाहता हूँ। मुग़लों से संधि कर लेने पर मेरा यह कार्य रुक जायगा?

जयसिंह—आपकी भावनाएँ उच्च हैं, और आप पर प्रत्येक

भारतीय को अभिमान है—मुझे भी है। किंतु एक असंभव साधना के पीछे जीवन बरबाद करना एक बात है, और व्यावहारिक राजनीति का तक़ाज़ा दूसरी। परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि बहुत प्रयत्न करने पर भी आप महाराष्ट्र के पहाड़ी प्रदेश के बाहर स्वराज्य का विस्तार न कर सकेंगे।

शिवाजी—मैं परिस्थितियों पर विजय पा सकता था, महाराज यदि आज मुझे आप जैसे वीर राजपूत राजाओं का सहयोग प्राप्त होता। मैं दरिद्र किसानों, अभाव ग्रस्त श्रमजीवियों और मध्यम वर्ग के साधन-हीन व्यक्तियों को लेकर स्वाधीनता की साधना कर रहा हूँ। यदि मुझे राजा-महाराजाओं और सम्पत्तिवान वर्ग का भी सहयोग मिलता तो विदेशी शासन कितने दिन टिक सकता था! महाराज, कुछ सोचिए। आज तख्ते-ताऊस आप-जैसे राजा महाराजाओं ही की भुजाओं पर रखा हुआ है। आप अपनी भुजाएँ हटा लीजिए, वह सीधा रसातल को चला जायगा।

जयसिंह—किंतु, शिवाजी, आप जानते हैं, राजपूत एक बार वचन देकर विश्वासघात नहीं कर सकता!

शिवाजी—देश के लिए? स्वाधीनता के लिए?

जयसिंह—नहीं। फिर भी मैं आपको निरुत्साहित नहीं करता। आपकी भावनाओं का हृदय से आदर करते हुए मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि आपकी साधना की सफलता के लिए भी यही उचित है, यही राजनीति की माँग है, यही परिस्थितियों का तकाज़ा है कि आप कुछ दिनों के लिए ही सही, औरंगज़ेब से

एक बार संधि कर लें। जो प्रदेश आपने अपने बाहु-बल से जीता है, पहले उसका प्रबंध ठीक करके फिर आगे बढ़ें! इस समय जबकि जयसिंह अपनी पूरी शक्ति के साथ दक्खिन में आया है, आपका आत्म-समर्पण न करना, आपके स्वप्न को सदा के लिए असंभव बना देगा।

शिवाजी—मैं आपके आगे कुछ नहीं कह सकता। यदि आप की यही आज्ञा है, तो मैं संधि करने को तैयार हूँ।

(दिलेरखाँ का नंगे सिर प्रवेश)

दिलेरखाँ—लेकिन मेरी पगड़ी! संधि! नामुमकिन! आप दोनों हिंदू राजा यह क्या साज़िश कर रहे हैं?

जयसिंह—दिलेरखाँ, होश में आकर बात करो? तुम मेरे मातहत हो। तुम्हें मेरी आज्ञा माननी होगी। मेरे निर्णय पर आपत्ति करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

दिलेरखाँ—माफ़ कीजिएगा राजा साहब, मेरा दिल.........
मेरी पगड़ी...... !

जयसिंह—बहादुर दिलेरखाँ, मैं इसका प्रबंध करूँगा कि तुम्हारी पगड़ी तुम्हारे सिर पर शोभित हो; लेकिन याद रखो, तुम ने यह कह कर मुझे बहुत चोट पहुँचाई है कि मैं साज़िश कर रहा हूँ। तुम नहीं जानते दिलेरखाँ, हम हिंदू लोग दूसरी क़ौम के ख़िलाफ़ नहीं, अपने ही भाइयों के ख़िलाफ़ साज़िश करते हैं, इसीलिए हमारी वीरता आज विदेशियों का अभेद्य कवच बनी हुई है। महामना सम्राट् अकबर ने जो दृष्टिकोण हिंदू और मुसलमानों

के सामने रखा था, जयसिंह तो आज भी उसी की रोशनी में चल रहा है! जिस दिन वह उस रोशनी से दूर हट जावेगा, मुग़ल सल्तनत बे-सहारा होकर गिर पड़ेगी, गिरकर चूर-चूर हो जाएगी।

दिलेरखाँ—माफ़ कीजिए राजा साहब, मैं यह बात भूल गया था कि दुनिया के तमाम बहादुर इनसानों की एक ही कौम होती है। शाबाश, शिवाजी! शाबाश! आप वाक़ई क़ाबिले तारीफ़ बहादुर हैं। आइये, मैं आपसे गले मिलना चाहता हूँ।

जयसिंह—बेशक, दिलेरखाँ अफ़ज़लखाँ नहीं है, शिवाजी! दिलेरखाँ जितना बहादुर है, उतना ही साफ़दिल भी। वह युद्ध-भूमि में पहाड़ की तरह दृढ़ है तो व्यवहार में चाँदनी की तरह उज्ज्वल।

शिवाजी—मैं ऐसे वीरों से युद्ध-भूमि और स्नेह-भवन दोनों में मिलकर प्रसन्न होता हूँ।

(शिवाजी और दिलेरखाँ गले मिलते हैं)

दिलेरखाँ—लेकिन (सिरपर हाथ फेर कर) मेरी पगड़ी!

जयसिंह—हाँ, शिवाजी, दिलेरखाँ ने कसम खाई है कि जब तक पुरंधर पर कब्जा न करेंगे, पगड़ी न पहनेंगे। आपको उनके सिर पर पगड़ी पहनानी होगी।

शिवाजी—महाराष्ट्र का स्वाभिमान कदाचित् इसकी आज्ञा न दे, किंतु महाराज जयसिंह की आज्ञा शिवाजी नहीं टालेगा। जाइए दिलेरखाँजी, पुरंधर पर कब्जा कर लीजिए, मैं उसे अभी खाली कराए देता हूँ।

जयसिंह—अब तो आपकी पगड़ी……

दिलेरखाँ—हाँ, मेरे सर पर पगड़ी बँधेगी तो सही, लेकिन वह शिवाजी की मेहरबानी से, दिलेरखाँ की दिलेरी से नहीं… मुझे इसका अफ़सोस……

शिवाजी—नहीं, मेरे बहादुर दोस्त, आप इसका ज़रा भी ख़याल न कीजिएगा! गढ़ लेना या न लेना तो बहुत कुछ परिस्थितियों पर निर्भर होता है, पर दुनिया में ऐसा कोई इनसान नहीं जो दिलेरखाँ की दिलेरी से इनकार कर सके।

जयसिंह—अच्छा तो शिवाजी, आप दिल्ली जाने की तैयारी करें। मैंने रामसिंह को लिख दिया है कि आपको कोई असुविधा न होने पावे। रास्ते में जहाँ-जहाँ आप ठहरेंगे, वहाँ के सूबेदार आपका स्वतन्त्र राजा की भाँति स्वागत करेंगे।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

आठवाँ दृश्य

[स्थान—आगरा में मुग़ल दरबार। बादशाह औरंगज़ेब तख्ते-ताऊस पर बैठा है। ज़फरखाँ, महाराजा जसवंतसिंह, रामसिंह, रायसिंह सीसोदिया आदि दरबारी खड़े हैं, पास ही कुछ पेटियाँ पड़ी हैं]

औरंगज़ेब—अल्लाह के फ़ज़ल से आज मेरी पचासवीं साल

गिरह है, मैं चाहता हूँ कि इस खुशी में इन पेटियों में भरे हुए जवाहरात और सोने चाँदी को ग़रीबों में बँटवा दिया जाय। ज़फ़रखाँ तुम इसका इंतज़ाम करो।

ज़फ़रखाँ—जो हुक्म जहाँपनाह, दरबार की कार्रवाई के बाद ही इन्हें बँटवा दिया जायगा।

औरंगज़ेब—आज दक्खिन का बाग़ी सरदार शिवाजी भी दरबार में हाज़िर होगा। इस से आज की खुशी कई गुना बढ़ जाएगी।

रामसिंह—बादशाह सलामत, गुस्ताखी माफ़ हो, अतिथि के प्रति उचित आदर प्रदर्शित किया जाना चाहिए। यह शिवाजी ही की नहीं—मुग़ल सल्तनत के स्तंभ महाराजा जयसिंह की भी इज्ज़त का सवाल है।

औरंगज़ेब—औरंगज़ेब के दूत की शिवाजी ने जैसी इज्ज़त की थी, औरंगजेब भी उसकी वैसी ही ख़ातिर करेगा। शाबाश जयसिंह, तुमने मेरी ख्वाहिश पूरी कर दी। शिवाजी का मुग़ल दरबार में आना मेरे लिए बहिश्त की खुशी हासिल करना है। सारे दक्खिन का सर आज मेरे तख्ते-ताऊस के आगे झुकेगा।

(शिवाजी, संभाजी और कुछ मराठे सरदारों का प्रवेश, सारे दरबार में खलबली मच जाती है। नेपथ्य से चूड़ियों की खनखनाहट की आवाज़ आती है)

औरंगजेब—आओ राजा शिवाजी!

(शिवाजी तख्ते-ताऊस के पास जाकर तीन सलाम करते हैं, फिर

१५०० मोहरें और ६००० रुपये नज़र करते हैं, बादशाह रामसिंह से शिवाजी को ले जाने का इशारा करता है)

औरंगज़ेब—रामसिंह, इन्हें इनका स्थान बतला दो।

(रामसिंह शिवाजी को ले जाता है—नेपथ्य में कोलाहल सुनाई देता है)

औरंगज़ेब—यह क्या हुआ ? ज़रा देखना जफरखाँ !

(ज़फरखाँ का प्रस्थान)

(रामसिंह शिवाजी को रायसिंह सीसौदिया के पास लेजाकर खड़ा करता है)

शिवाजी—(रामसिंह से) ये कौन हैं ?

रामसिंह—राजा रायसिंह सीसौदिया। पिताजी के नीचे ये......

शिवाजी—(बात काट कर) मक्कार औरंगज़ेब ! मुझे जयसिंह के अधीन पदाधिकारियों के बराबर खड़ा किया है ! मुझे छुरा दो, छुरा दो !

(शिवाजी रामसिंह का छुरा झपट कर लेना चाहते हैं, पर रामसिंह रोकता है, नेपथ्य से किसी युवती की चीख सुनाई पड़ती है)

औरंगज़ेब—यह क्या ! ज़नानी ड्योढ़ी से यह किस की चीख सुनाई दी ?

रामसिंह—(शिवाजी से) शिवाजी, समय को देख कर कार्य कीजिए।

शिवाजी—मुझे नहीं मालूम था कि राजपूत भी झूठे होते हैं। छुरा दे दो रामसिंह, मैं आज औरंगज़ेब का खून कर दूँगा, या आत्म-हत्या कर लूँगा। शत्रु के आगे शिवाजी का सिर कभी नहीं झुका, कभी नहीं झुकेगा। जब मित्र की भाँति औरंग-ज़ेब की ओर से जयसिंह जी ने हाथ बढ़ाया तभी शिवाजी का सिर इस तख्ते-ताऊस के आगे झुका। वह सलाम औरंगज़ेब के आगे न था, एक राजपूत राजा के विश्वास के आगे था।

(ज़फ़रखाँ का प्रवेश)

ज़फ़रखाँ—ग़ज़ब होगया बादशाह सलामत, शाहज़ादी ज़ेबुन्निसा को अचानक ग़श आगया! वे भी बेगमों और दूसरी औरतों के साथ शिवाजी को देखने ज़नानी ड्योढ़ी में आई थीं।

औरंगज़ेब—हूँ···। ताज्जुब है···शिवाजी को देखकर औरंगज़ेब की लड़की को ग़श!

ज़फ़रखाँ—शाहज़ादी अब बिलकुल ठीक हैं, जहाँपनाह! फ़िक्र की कोई बात नहीं है।

औरंगज़ेब—(रामसिंह से) यह क्या माजरा है?

रामसिंह—हुजूर, जंगली शेर मुग़ल दरबार के कायदे नहीं जानता। यहाँ की अजनबी भीड़ और गरमी से शायद······

औरंगजेब—अच्छा, इन्हें इनके महल में ले जाओ!

(रामसिंह शिवाजी को बरबस बाहर लेजाने का प्रयत्न करता है, शिवाजी भूखे भेड़िए की तरह औरंगजेब की तरफ़ देखते हैं)

शिवाजी—(रामसिंह से) छोड़ दो रामसिंह! इस अपमान का बदला।

रामसिंह—स्थान और परिस्थिति को देखिए, शिवाजी! इस वक्त आप पिंजरे में फँसे हुए शेर हैं। चलिए बाहर चलें!

(रामसिंह के साथ शिवाजी और उनके साथियों का प्रस्थान)

औरंगज़ेब—देखता कैसे था—जैसे भूखा भेड़िया हो। उन दो आँखों में कितनी आग थी मानों सारे जहान को जला देंगी। चला गया! भरे दरबार में इस तरह आँखें दिखाता हुआ चला गया! आज उसके पास हथियार होता तो न जाने क्या होता! खैर! ज़फ़रखाँ, शिवाजी के महल पर ५००० सिपाहियों का पहरा कोतवाल फौलादखाँ की मातहती में लगवा दो! इस पहाड़ी चूहे को अब पता लगेगा कि औरंगज़ेब किस धात का बना हुआ है।

[पटाक्षेप]

❀

❀ ❀

चौथा अंक
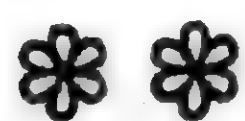
पहला दृश्य

[औरंगज़ेब के अंतःपुर का एक भाग। शाहज़ादी ज़ेबुन्निसा अकेली गा रही]

ज़ेबुन्निसा—(गान)

मैं पंछी बन उड़ जाऊँ !

फूल खिला बगिया में, अँखियों

से पंखुरी छू आऊँ !

उस पराग से अपना तन, मन

रूह, जिगर भर लाऊँ !

सारी उम्र तराने, पागल

बन, उस छवि के गाऊँ !

गीत फूल के गाती-गाती

धूल बनूँ, मिट जाऊँ !

ऐसा तूफ़ान-सा दिल में पहले तो कभी नहीं उठा था। शिवाजी की बहादुरी की चर्चा सुनते-सुनते उस दिन उसे महज़ देखने की ख्वाहिश हुई थी और इसलिए जब वह मुग़ल दरबार में आया तो मैं भी ज़नानी ड्योढ़ी से उसे देखने गई थी ! लेकिन

पहली ही झाँकी में यह क्या हुआ ! मैं बेहोश-सी क्यों होगई ? लोगों ने क्या समझा होगा ? लेकिन पागल दिल पर ज़ोर ही क्या ?

(फिर गाने लगती है)

मैं पंछी बन उड़ जाऊँ !
फूल खिला बगिया में, अँखियों
से पंखुरी छू आऊँ !
मैं पंछी बन उड़ जाऊँ !

(जहानारा का प्रवेश)

जहानारा—(तान में तान मिलाकर) मैं पंछी बन उड़ जाऊँ !

ज़ेबुन्निसा—कौन ? जहानारा फूफी !

जहानारा—हाँ ! यह क्या हो रहा है ज़ेबुन्निसा ! संगीत के दुश्मन बादशाह आलमगीर की शाहज़ादी हो तुम ! कहीं तुम्हारे अब्बाजान के कान में यह सुरीली तान पड़ गई, तो पंछी का गला घोंट दिया जायगा ! जानती हो ?

ज़ेबुन्निसा—जानती हूँ, फूफी ! लेकिन जब कोयल बगीचे में गाती है, तो अब्बाजान का क़ानून उस पर लागू क्यों नहीं होता ?

जहानारा—भोली शाहज़ादी ! अच्छा, तुमने कुछ और भी सुना है। बादशाह ने शिवाजी को क़त्ल करने का हुक्म दे दिया है, क्योंकि शाइस्तखाँ की बहन बादशाह के पैरों पर गिर पड़ी और बोली कि मेरे भाई की हतक मुग़ल सल्तनत की हतक है, बादशाह आलमगीर की ताक़त की हतक है। जिसने बादशाह के

मामा का अँगूठा काटा है, उसका सर धड़ पर क्यों क़ायम रहना चाहिए।

ज़ेबुन्निसा—(आँसू भर लाती है) आह!

जहानारा—लो, तुम तो रोने लगीं! आख़िर यह माजरा क्या है?

ज़ेबुन्निसा—(आँसू पोंछ कर) क्या बताऊँ! यह दिल बड़ा कमज़ोर है। फूफी! फूफी!

जहानारा—कहो बेटी!

ज़ेबुन्निसा—किसी तरह शिवाजी की जान बचानी होगी!

जहानारा—उसकी जान बचाकर तुम क्या पाओगी? वह बहादुर क्या तुम्हें.......

ज़ेबुन्निसा—और कुछ नहीं, मुझे सिर्फ एक बहादुर की जान बचाने का फ़ख़्र हासिल करना है।

जहानारा—तुम जानती हो, औरंगज़ेब मेरी बात नहीं मानता! हाँ, रोशनआरा से कहा जाय तो काम बन सकता है। लो, बहन तो यहीं आ गई!

(रोशनआरा का प्रवेश)

रोशनआरा—यह क्या हो रहा है?

जहानारा—मुग़ल सल्तनत की क़िस्मत लिखी जा रही है। मैं तुम से सीधी और साफ़-साफ़ बात करना चाहती हूँ। तुमने उस दिन कहा था मुग़ल ख़ानदान के इतने लोगों के ख़ून का सबब तुम हो। आज मौक़ा आया है कि तुम अपना अजाब धो सको!

रोशनआरा—कैसे ?

जहानारा—शिवाजी की जान बचा कर।

रोशनआरा—क्या तुम चाहती हो कि रोशनआरा अपने हाथ से मुग़ल सल्तनत की क़ब्र खोदे ?

जहानारा—नहीं बहन, ऐसा करके तुम मुग़ल सल्तनत को बरबाद होने से बचा लोगी। तुम्हें औरंगज़ेब प्यारा है, लेकिन मुग़लों की सल्तनत उससे भी ज़्यादा प्यारी चीज़ होनी चाहिए। तुम जानती हो, शिवाजी को महाराजा जयसिंह ने आगरा भेजा है—यह यक़ीन दिला कर कि उसके साथ धोखा न होगा। आज अगर शिवाजी का बाल-बाँका हुआ तो महाराज जयसिंह इस में अपनी हतक समझेंगे। दुनिया जानती है कि मुग़ल सल्तनत आज उसी राजपूत के सहारे पर खड़ी है। वह बाग़ी हो गया तो सारा राजपूताना ही नहीं, सारा हिंदुस्तान बग़ावत की चिनगारियों से धधक उठेगा। औरंगज़ेब अंधा हो रहा है, तुम्हें उसे समझाना होगा। वह तुम्हारा कहना मानता है, तुम्हें उसे हक़ की राह पर लाना होगा।

रोशनआरा—तुम ठीक कहती हो, बहन! हम औरतों को राजनीति में शामिल न होना चाहिए था, लेकिन जब एक बार इस दल-दल में पैर पड़ गया तो फिर उससे निकलने का रास्ता नहीं है। मेरी एक चिट्ठी यह तूफ़ान पैदा करेगी, यह मैं न जानती थी।

(औरंगज़ेब का प्रवेश)

औरंगज़ेब—तुम तीनों यहाँ क्या सलाह कर रही हो। मैं तुम्हें तलाश कर रहा था।

रोशनआरा—हम ख़ुद तुम्हारी तलाश में थीं। शिवाजी के बारे में तुमने क्या तय किया ?

औरंगज़ेब—मौत ! बाग़ी के लिए मौत के सिवा और क्या !

रोशनआरा—एक बाग़ी का सर काट कर सारे हिंदुस्तान को बाग़ी बनाना कहाँ की अक़्लमंदी है भाई !

औरंगज़ेब—औरंगज़ेब तमाम बाग़ियों का सर कुचलना जानता है।

रोशनआरा—लेकिन जयसिंह, रामसिंह और जसवंतसिंह का सर कुचलना औरंगज़ेब की भी ताक़त के बाहर है। फिर इस मुग़ल सल्तनत को धोखा, फ़रेब और खून-खराबी के ज़ोर पर कितने दिन तक क़ायम रखा जा सकता है। तुम नहीं, तो तुम्हारे बच्चे सल्तलत गँवा बैठेंगे। एक शिवाजी को क़त्ल कर देने से हज़ारों शिवाजी पैदा हो जायँगे। फिर औरंगज़ेब की तलवार उन्हें क़त्ल करने कहाँ-कहाँ पहुँचेगी ? ज़रा सोचो तो, तुम एक महमान का खून कराने चले हो। दुनियाँ तुम्हें क्या कहेगी ? क्या मुग़ल आज इतने बोदे हो गये हैं कि वे एक बहादुर इनसान से मैदान में लोहा नहीं ले सकते ? क्या दिलेर दुश्मनों को धोखे से महमान बना कर क़त्ल कर देने पर ही आज मुग़लों की ताक़त और सल्तनत का दारोमदार रह गया है। इस तरह मुगलों की इज्ज़त पर बट्टा न लगाओ, औरंगज़ेब !

औरंगज़ेब—जानता हूँ, यह सब जहानारा की साज़िश है, उसी की सीख है। अफ़सोस! रोशनआरा तू भी उसके साथ हो गई!

जहानारा—जब तुमने भाइयों का खून किया तो जहानारा ने उसे किसी तरह बरदाश्त कर लिया। लेकिन अब तुम मुगल सल्तनत का खून करने जा रहे हो, यह किसी तरह नहीं सहा जा सकता। हमारी रगों में भी मुगल खून लहरा रहा है, हम इस सल्तनत को मिट्टी में मिलते नहीं देख सकतीं!

रोशनआरा—बोलो औरंगज़ेब! रोशनआरा की इल्तिजा तुम्हें मंजूर है?

औरंगज़ेब—अच्छा, शिवाजी की जान न ली जायगी, लेकिन वह वापिस दक्खन न जा सकेगा। वह यहीं आगरा में नज़रबंद रहेगा!

जहानारा—शुक्रिया! औरंगज़ेब ने ज़िंदगी में पहली बार थोड़ी-सी इनसानियत का सुबूत दिया है।

औरंगज़ेब—यानी कि तुम मुझे हैवान समझती हो!

(आँखें दिखाता है)

जहानारा—तुमने अब्बा को बुढ़ापे में जो तकलीफ़ दी, उसके लिए मैं तुम्हें उम्र भर कोसूँगी, चिढ़ाऊँगी। तुम्हें बुरा लगे या भला! मैं तो सिर्फ इसी लिए जी रही हूँ!

रोशनआरा—चुप रहो बहन! चलो भाई! अब हमें चलना चाहिए।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—शिवपुरा—वह हवेली जिसमें शिवाजी, ठहराए
गए थे। शिवाजी, संभाजी और हीरोजी फ़रजंद
परामर्श कर रहे हैं]

शिवाजी—परिस्थिति विकट है। यदि एक बार किसी प्रकार दक्षिण में पहुँच पाऊँ, तो इस षड्यंत्र का उचित उत्तर दूँ। इस बंदीगृह से मुक्ति……

हीरोजी—मुक्ति का उपाय तो है, किन्तु मालूम नहीं; आप उससे सहमत होंगे या नहीं। जैसी कि यहाँ के दरबारियों में अफ़वाह है, ज़ेबुन्निसा……

शिवाजी—हीरोजी, संयम से काम लो। शिवाजी ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं है। लोग कुछ भी कहें, हमें शत्रु-कन्या की प्रतिष्ठा का उतना ही खयाल रखना चाहिए, जितना अपनी कन्या का। और फिर तुम जानते हो कि शिवाजी के हृदय में स्वर्ग की अप्सरा के लिए भी स्थान नहीं है, वह केवल जननी-जन्म-भूमि को जानता है। शिवाजी कंगाल और कृश-तन कृषकों को प्यार करता है, वस्त्र-हीन और कुरूप श्रमियों पर जान देता है, उसके सामने नारी-सौंदर्य और रस-चर्चा……

हीरोजी—मेरा अपराध क्षमा कीजिए, महाराज! मेरे मन में

क्षणभर यह विचार उदित हुआ था कि देश की स्वाधीनता के लिए यदि एक शिवाजी का धर्म चला जाय, तो कोई बहुत बड़ा बलिदान नहीं होता ! क्या समूचे देश की स्वधीनता एक व्यक्ति के धर्म से अधिक मूल्यवान और अधिक प्रिय नहीं है ? क्या उसका मोह छोड़ देने से कोटि-कोटि देशवासियों के धर्म की रक्षा नहीं होती ?

शिवाजी—तुम्हारा यह अद्भुत तर्क मेरी समझ में नहीं आता। ज़रा धैर्य से काम लो। मैं ऐसा उपाय सोचता हूँ जिस से लोक और परलोक दोनों की रक्षा हो। चिंता क्यों करते हो ? यह सत्य है कि आज शेर पिंजरे में आ फँसा है, किंतु यह भी ध्रुव है कि द्वार अवश्य खुलेगा।

(रामसिंह का प्रवेश)

रामसिंह—जुहार, शिवाजी !

शिवाजी—आओ भैया, रामसिंह !

रामसिंह—यह हर बृहस्पतिवार को भिक्षुकों को मिठाई बटवाने और मंदिरों और मस्जिदों को दान भिजवाने की योजना आपको खूब सूझी है।

शिवाजी—मैं बीमार हूँ, और औरंगज़ेब की इच्छा नहीं है कि शिवाजी जीते-जी अपनी जननी जीजाबाई और जन्म-भूमि के दर्शन करे। अन्तिम समय है, सोचता हूँ कि जितना पुण्य कर लिया जाय, थोड़ा है !

रामसिंह—आप इतनी जल्दी निराश क्यों होते हैं। बादशाह

के विचार बदल रहे हैं। वे चाहते हैं कि आप उत्तरी भारत में रहना स्वीकार करें और वह आपको यहीं नई जागीर दे दें। उसके साथ-साथ आपका दक्षिण का राज्य संभाजी को सौंप दिया जाय। इस तरह आप उत्तर और दक्षिण दोनों जगह अपना प्रभाव बढ़ा सकते हैं।

शिवाजी—देखो रामसिंह, तुम्हारे पिता ने मुझे अपना पुत्र माना है, इसलिए तुम मेरे लिए सगे भाई से बढ़ कर हो। तुम नवयुवक हो, मैं नहीं मान सकता कि तुम्हारे हृदय में स्वदेश के प्रति ज़रा भी ममता नहीं है। तुम मेरी वेदना को खूब समझ सकते हो। मैं तुम्ही से पूछता हूँ कि मैं देश के प्रति विश्वासघात कैसे करूँ! मैं फ़कीर बन कर रहूँगा, इसी शिवपुरा में जान गँवा दूँगा, किंतु औरंगज़ेब की अधीनता स्वीकार न कर सकूँगा। यह निर्विवाद है कि मेरा अधःपतन स्वाधीनता के आंदोलन की कमर तोड़ देगा। नेता मृत्यु के बाद भी देश का नेतृत्व करता है, किंतु उसका नैतिक पतन उसके आंदोलन का सर्वनाश कर देता है। नैतिक पतन के आगे मृत्यु की कोई हस्ती नहीं।

रामसिंह—किंतु……

शिवाजी—किंतु नहीं! मैं सोचता हूँ कि यदि आज तुम भी मेरे साथ होते तो उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों ओर से रण के बादल घिरते। दोनों दिशाओं से स्वाधीनता-देवी का शंखनाद होता। फिर संसार देखता कि भारत का नक्शा किन लकीरों से बनता है।

रामसिंह—भाई, मैं क्या कहूँ, मैं तो पिताजी का अनुचर मात्र हूँ।

शिवाजी—वे बूढ़े होगए हैं, स्थिति-पालन ही अब उनका धर्म है। तुम जवान हो, तुम्हारा खून नई तरंगों से तरंगित है। तुम युग की नवीन रश्मियों में स्नान कर नवीन कर्म-पथ पर चलो, भैया!

रामसिंह—अवसर आने दो, शिवाजी! तात्कालिक आवश्यकता तो आपकी यहाँ से मुक्ति ही है।

शिवाजी—मेरी मुक्ति! नहीं भैया, तुम उसकी चिंता न करो। यदि आज से रामसिंह के मन में जन्मभूमि की स्वतंत्रता की लगन जाग पड़े तो मैं इसी क्षण आनंद के अतिरेक में आँखें मूँद लूँ, चिरकाल के लिए इस आनन्द को आँखों में बंद करके सो जाऊँ!

रामसिंह—मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर चौराहे पर खड़ा हूँ। नहीं जानता कि मुझे कहाँ जाना चाहिए। इधर स्वामि-भक्ति है, उधर देश की स्वाधीनता! इधर वचन-पालन है, उधर नवयुग का आह्वान!

शिवाजी—यहीं तो दृष्टि-कोण का अंतर है। मैं तो राष्ट्र के सिवा और किसी अस्तित्व को अपना स्वामी नहीं समझता! इसलिए अपना कर्म-पथ निश्चित करने में मुझे कोई बाधा नज़र नहीं आती। तुम खूब जानते हो भाई, मैंने तो देश की ख़ातिर अपने पिताजी के जीवन को भी संकट में डालने में संकोच नहीं किया!

रामसिंह—यह आप क्या कह रहे हैं ! औरंगज़ेब के एक सेवक से बाग़ी बनने को कह रहे हैं।

शिवाजी—मुझे इसका भय नहीं ! तुम तरुण हो, भारतीय वीरता के वास्तविक प्रतिनिधि हो, तुम्हारे हाथ से मुझे मरण-व्यवस्था भी संतोषप्रद होगी !

रामसिंह—नहीं शिवाजी, आप यह क्या कहते हैं ! आप हमारे अतिथि हैं। पिताजी की आज्ञा और मान-प्रतिष्ठा को मैं धक्का न लगने दूँगा। औरंगज़ेब ने जो कुछ किया है, उसके लिए मैं हृदय से लज्जित हूँ।

शिवाजी—किंतु मेरा प्रश्न ?

रामसिंह—उसका उत्तर मैं अभी नहीं दे सकता ! महामना अकबर ने जिस दिशा में चलने का निर्देश किया था, उस पर चलने में देश की समस्या हल हो सकती थी ! दुःख है कि औरंग-ज़ेब को दिशा-भ्रम होगया है !

शिवाजी—मेरी राय में तो जो दिशा-भ्रम अब है, वह अकबर के काल में भी था। महाराणा प्रताप उस समय अकेले थे, शिवाजी भी आज अकेला है। महाराणा की दृष्टि केवल मेवाड़ पर थी, उन्होंने मानसिंह के सहयोग को अस्वीकार किया था, शिवाजी की दृष्टि सारे भारत पर है और वह रामसिंह का सहयोग माँग रहा है।

रामसिंह— मैं आपकी भावनाओं का आदर करता हूँ, किंतु, राजपूत वचन-पालन को स्वदेश-सेवा से भी बड़ा समझता है। अब मैं जाता हूँ। (प्रस्थान)

शिवाजी—दुर्भाग्य ! हीरोजी, मैंने सोचा था कि आगरा जाकर वहाँ की राजपूत-शक्तियों को अपना संदेश सुनाऊँगा, माँ का आह्वान उन तक पहुँचाऊँगा ! किंतु मेरे सारे अरमान छिन्न-भिन्न हो गए। यह राजपूत जाति कितनी वीर और कितनी दृढ़ है, किंतु, इसका दृष्टिकोण कितना भोला और कितना पुराना है।

हीरोजी—अब यहाँ से किसी प्रकार छुटकारा पाना आवश्यक है !

शिवाजी—देखो, हीरोजी, मैंने मिठाइयों के टोकरे बाहर भेजना इसीलिए प्रारंभ किया है ! अब की बृहस्पतिवार को हम सब एक-एक टोकरे में बैठकर बाहर निकल जावेंगे।

हीरोजी—वाह महाराज, आपकी सूझ अद्भुत है ! लेकिन, यहाँ आपकी खाट सूनी पाकर प्रहरियों को संदेह होगा और टोकरे रास्ते ही में पकड़ लिये जावेंगे ! इसलिए मैं चाहता हूँ कि मैं तो आपकी चारपाई पर सो जाऊँ और आप टोकरे में बैठकर निकल जाएँ। इससे किसी को तनिक भी संदेह न होगा और आप कुशल-पूर्वक दक्षिण के मार्ग पर पहुँच जायँगे।

शिवाजी—किंतु, इससे तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जायँगे।

हीरोजी—उसकी क्या चिंता है महाराज ! मराठों के लिए मृत्यु आज कोई अपरिचित अतिथि नहीं है। हम प्रतिक्षण उसे अपने निकट पाते हैं। और फिर ऐसी सार्थक मृत्यु ! मेरा हृदय उस पर फूला न समाएगा और सारा संसार मुझ से ईर्ष्या करेगा ! देश के महान स्वाधीनता-आंदोलन के प्रवर्तक को उसकी अपूर्ण

साधना पूरी करने के लिए भेज कर मैं अपने जीवन का पूरा मूल्य वसूल कर लूँगा। उसके बाद मेरे लिए मृत्यु शांति की अंतिम निद्रा की तरह सुखकर होगी।

शिवाजी—धन्य हो हीरोजी! तुम्हारा आत्म-त्याग प्रशंसनीय है। तुम जैसे वीरों पर ही वीर-भूमि महाराष्ट्र का अभिमान निर्भर है। अच्छा आओ, ज़रा बाहर चलकर आसमान का रंग देखें।

(सब का प्रस्थान)

[पट परिवर्तन]

———

तीसरा दृश्य

[स्थान—आगरा के लाल किले का एक भाग। औरंगज़ेब और रामसिंह बातें कर रहे हैं]

रामसिंह—आपने शिवाजी को नज़रबंद करके मुग़ल दरबार के अतिथि-सत्कार की ख्याति पर ही नहीं, पिताजी के और मेरे अभिमान पर भी भीषण प्रहार किया है। राजपूत युद्ध-भूमि में यम से भी लोहा लेने को तैयार रहता है, किंतु, विश्वास में बाँध कर घर बुलाकर किसी अतिथि के साथ कपट नहीं कर सकता। मैं आप से फिर प्रार्थना करता हूँ कि आप शिवाजी को दक्खिन लौट जाने दें।

औरंगज़ेब—औरंगज़ेब अपने दुश्मन के साथ मनमाना बरताव करने में अपने को आज़ाद समझता है। बाग़ी के साथ बादशाह को क्या सलूक करना चाहिए, यह तुम नहीं जान सकते रामसिंह! शिवाजी को क़त्ल न करके उस पर जो रहम किया गया है, वह महज़ राजा जयसिंह की ख़ातिर!

रामसिंह—पिताजी ने शिवाजी से कहा था कि दरबार में उन्हें प्रथम पद पर सुशोभित किया जायगा, किंतु आपने उन्हें पंच-हज़ारियों में खड़ा करने का प्रयत्न किया। आप शिवाजी का मूल्य चाहे कुछ न समझें किंतु पिताजी जैसे स्वामिभक्त, विश्वास-पात्र एवं साम्राज्य के सुदृढ़ स्तंभ सेनापति के वचन का तो कुछ सम्मान करते।

औरंगज़ेब—मुझे किसके साथ कैसा सुलूक करना चाहिए, इसके बारे में मैं किसी की सलाह नहीं लेना चाहता।

रामसिंह—तो याद रखिए भविश्य में शिवाजी की किसी कार्य-वाही के लिए महाराज जयसिंह या रामसिंह ज़रा भी उत्तर-दायी न होंगे।

(फ़ौलादख़ाँ का प्रवेश)

फ़ौलादख़ाँ—(सलाम करने के बाद) बादशाह सलामत! ग़ज़ब हो गया!

औरंगज़ेब—क्या हुआ?

फ़ौलादख़ाँ—शिवाजी ग़ायब हो गए!

औरंगज़ेब—शिवाजी ग़ायब हो गया। यह मैं क्या सुन रहा

हूँ ? उफ़ ! यह शैतानी ! शाहंशाह औरंगज़ेब ! आज तेरा घमंड एक पहाड़ी चूहे ने चूर-चूर कर दिया। मैं अब तक कितनी ग़लती पर था। मेरा ख़याल था कि मक्कारी में, जालसाज़ी में, जुल्म में, राजनीति की चालों में, मुझे कोई शिकस्त नहीं दे सकता। मगर, शिवाजी ने, इस फ़ितरत के पुतले शिवाजी ने, मुझे वाक़ई हैरान कर दिया, मेरा मुग़ालता रफ़ा कर दिया।

रामसिंह—सेर को कभी कभी सवा सेर भी टकर जाता है, जहाँपनाह !

औरंगज़ेब—चुप रहो, रामसिंह ! फौलादखाँ, तुम से मैं सख्त नाराज़ हूँ, शिवाजी जब ग़ायब हुआ तब तुम और तुम्हारे ५००० पहरेदार क्या जहन्नुम में चले गये थे, या अफ़ीम खाकर झपकियाँ ले रहे थे ?

फौलादखाँ—यक़ीन कीजिए बादशाह सलामत ! हमारी आँखें उसी तरह खाली हुई थीं जिस तरह आसमान में तारे चमकते हैं। लेकिन शिवाजी तो जादूगर है, वह हवा बन कर कहाँ से कब ग़ायब हो गया, हम कुछ भी न जान सके।

औरंगज़ेब—चुप रहो बेवकूफ़ ! अफ़सोस ! आज ज़िंदगी की एक ज़बरदस्त चाल खाली गई। मग़रूर औरंगज़ेब ! तूने ऐसी चोट कभी न खाई होगी। यह कैसे हो सकता है कि ऐसे कड़े पहरे से शिवाजी बात की बात में निकल भागे ! फौलादखाँ, उसने ज़रूर तुम पर जादू चलाया है। तुमने ज़रूर उससे रिश्वत ली है।

तुम्हारी सारी जायदाद ज़ब्त की जाती है और तुम्हें बरख़ास्त किया जाता है।

रामसिंह—उस ग़रीब का इसमें क्या क़ुसूर ?

औरंगज़ेब—चुप रहो, रामसिंह ! मैं सूरज की रोशनी की तरह साफ़ देख रहा हूँ कि इस साजिश में तुम्हारा भी हाथ है। कल से तुम्हें दरबार में आने की इजाज़त न होगी।

रामसिंह—"खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे" इसी को कहते हैं। अगर राजपूतों ने वचन-पालन ही अपना सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य न समझा होता तो आज तख्ते-ताऊस पर आपकी जगह महाराज जयसिंह आरूढ़ दिखाई देते। जिन महाराज जयसिंह ने आपको भाइयों के खिलाफ़ मदद देकर सिंहासनारूढ कराया, वे अगर खुद अपने हाथों में साम्राज्य की बागडोर लेना चाहते, तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता था।

औरंगज़ेब—औरंगज़ेब सारी दुनियाँ से अकेला लड़ सकता है। वह किसी की मदद का तलबगार नहीं। मुग़ल सल्तनत राजपूतों के सहारे के बिना भी क़ायम रह सकती है।

रामसिंह—यह तो ज़माना बताएगा। आज तो मैं भगवान् को धन्यवाद ही देता हूँ कि मुझे तख्ते-ताऊस के आगे सिर झुकाने के अप्रिय कार्य से छुटकारा मिल गया। फिर भी एक बात याद रखिए कि राजपूत पर संदेह करके आपने अच्छा नहीं किया।

औरंगज़ेब—मेरे पास ये बातें सुनने को फ़ुरसत नहीं है। फौलादखाँ, तुम पत्थर की मूरत बने क्या खड़े हो ? जाओ,

फ़ौरन आगरा के सारे रास्ते घेर लो। मुगलों की फ़ौज टिड्डीदल की तरह सब जगह छा जानी चाहिए। फिर देखें शिवाजी कहाँ जाता है। याद रखो, फौलादखाँ, अगर शिवाजी पकड़ा न गया तो तुम्हारा सर धड़ पर क़ायम न रहेगा। जाइए रामसिंह जी, अब मुझे भी जाना है।

(एक ओर से औरंगज़ेब का और दूसरी ओर से रामसिंह और फ़ौलादखाँ का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान—दिल्ली में मुग़ल-अंतःपुर का एक भाग, ज़ेबुन्निसा गा रही है]

तन महल की कैद में है, प्राण ने धूनी रमाई।
सुख जगत में जब बँटा, तब—
भाग्य मेरा सो रहा था,
भीड़ थी कितनी, रुको मैं,
शोर कितना हो रहा था,
ले गई आशा, निराशा द्वार पर से फेर लाई।
तन महल की कैद में है, प्राण ने धूनी रमाई।

इस क़फ़स की तीलियों में,
है रतन सोना जड़ा है,
सामने बस्ती बसी है,
दिल मगर खाली पड़ा है,
यह नहीं मेरा ठिकाना, मैं यहाँ पथ भूल आई।
तन महल की कैद में है, प्राण ने धूनी रमाई।
कौन सी चाही नियामत,
इस अभागिन ने किसी से,
कुछ निराली थी तमन्ना,
मिट गई बस मैं इसी से,
मिलन का दिन आ न पाया, रात बन आई जुदाई।
तन महल की कैद में है, प्राण ने धूनी रमाई।
क्यों मुझी से पूछती है
आज दुनियाँ काट कर पर,
क्यों न उड़ती तू खुशी के,
आसमाँ पर चहचहा कर,
हसरतों का खून कर, अब कर रही यह रहनुमाई।
तन महल की कैद में है, प्राण ने धूनी रमाई।

ज़ेबु०—(अपने आप) जिस बदनसीब की ज़िंदगी जीने के काबिल न रह गई हो, वह इस दुनिया को रहने के लायक कैसे समझे ! इस बेवफ़ा ज़िंदगी पर कोई कैसे भरोसा करे ! इसके लिए दिन-रात पागल की तरह सामान इकट्ठा करने वाला इन्सान एक

दिन देखता है कि ज़िंदगी का सच्चा सुख ही उसे मयस्सर नहीं है। तब उसे ऐशो-इशरत का एक-एक सामान अपने जीते-जी अपनी क़ब्र के एक-एक पत्थर की तरह नागवार मालूम होता है। जो सोना-चाँदी अरमानों से भरे-पूरे दिल को कल तक जेवर बन कर खुशी देता है, वही आज दुखी दिल के सूनेपन के लिए पहाड़ की तरह भारी हो जाता है। इन्सानियत का सब से बड़ा सुख है इन्सान होना और प्यार करने की--पराए को अपना बना सकने की—आजादी इन्सान होने की सबसे बड़ी पहचान है। वह इन्सान के दिल की सबसे बड़ी तमन्ना है। उसके बिना इन्सान, बादशाह हो सकता है, देवता हो सकता है, हैवान हो सकता है, मगर इन्सान नहीं हो सकता। मैंने सिर्फ इन्सान होना चाहा था; खुदा ने मुझे इन्सान भी बनाया और बादशाहज़ादी भी; मगर उसी खुदा की बनाई हुई दुनियाँ मुझे सिर्फ बादशाहज़ादी बनने देना चाहती है, इन्सान नहीं। बड़े रश्क के साथ लोग मुझे देखते हैं और कहते हैं "बादशाहज़ादी", मगर वे मेरे दिल का दर्द नहीं जानते। उन्हें नहीं मालूम कि शाहज़ादी बनकर मुझे क्या खोना पड़ा है। क़ैदखानों के क़ैदी बदनसीब होते हुए भी खुशनसीब हैं, क्योंकि उनके दिल होता है, जान होती है, मगर धन दौलत से भरे-पूरे इस शाही महलसरा की कैदी शाहज़ादियाँ महज़ रंग-बिरंगी लकड़ी की गुड़ियाँ हैं, जिन्हें जज़्बातों से बिलकुल खाली, तमन्नाओं से एक दम सूना और दर्दे-दिल से कतई बेखबर समझा जाता है, जिनकी किस्मत का धागा

सल्तनत की बागडोर के साथ बँधा रहता है और जिनकी मुहब्बत को भी बादशाहों की भौंहों के उतार-चढ़ाव के साथ पैदा होना और मिटना पड़ता है। ओ गरीब और आज़ाद इनसान ! असल में रश्क करने की चीज़ तो तू है।

(जेबुन्निसा की सहेली और कनीज़ सलीमा का प्रवेश)

सलीमा—बादशाहज़ादी !

ज़ेबु०—चुप रहो सलीमा ! अगर बोलना ही है, तो उसी तरह बोलो जिस तरह एक इन्सान दूसरे इन्सान से बोलता है। ऐसा डरावना नाम लेकर एक मुलायम दिल रखने वाली लड़की को न पुकारो। तुम मुझे शाहज़ादी कहती हो, मगर मैं यह महसूस करती हूँ कि इस दुनियाँ में मुझ से बढ़कर कंगाल कोई इन्सान का जाया न होगा।

सलीमा—मैं सदक़े, मेरी शाहज़ादी ! सल्तनत की सारी दौलत तुम पर निसार ! तुम यह क्या कह रही हो ? क्यों दिल इतना छोटा कर रही हो ?

ज़ेबु०—तुम नहीं जानतीं, प्यारी सलीमा, कि मैं कितनी बेबस और कितनी लाचार हूँ ! तुम कहती हो कि सल्तनत की सारी दौलत मुझ पर निसार हो सकती है, मगर मैं कहती हूँ कि मेरी इतनी भी मजाल नहीं कि मैं अपनी मरज़ी से एक पत्ते को भी इधर से उधर कर सकूँ। मैं दुनियाँ में सब से बदनसीब और सबसे दुखी हूँ ! (आँसू आ जाते हैं)।

सलीमा—(आँसू पोंछकर गले से लगाते हुए) प्यारी शाहज़ादी !

अपने दिल का दर्द मुझ से कहो। तुम कहती हो कि एक पत्ते को भी हिला सकने की ताक़त तुम में नहीं, मैं कहती हूँ कि एकाध पत्ता तो क्या एक छोटे-मोटे पूरे पेड़ के बराबर यह सलीमा तुम्हारे हुक्म की बंदी है। इसे तुम चाहे जिस तरह काम में ला सकती हो। मैं बड़ी बात नहीं कहती शाहज़ादी, मगर इतना यक़ीन दिलाती हूँ कि मैं तुम्हारे लिए दुनियाँ की सल्तनत को ठुकरा सकती हूँ, हँसते-हँसते जान दे सकती हूँ और आसमान के तारे तोड़ डालने की भी कोशिश कर सकती हूँ।

ज़ेबु०—यह सब इसलिए कि तुम इन्सान हो, शाहज़ादी नहीं। काश! मैं भी तुम्हारी तरह किसी से कह सकती कि मैं तुम्हारे लिए दुनियाँ की सल्तनत को ठुकरा सकती हूँ, हँसते-हँसते अपनी जान दे सकती हूँ। मैं यह नहीं कह सकती सलीमा, मैं अपने दिल की मालिक नहीं हूँ। यही तो मेरा दुःख है। यही तो मेरा दर्द है।

सलीमा—(मुसकरा कर) अच्छा यह बात है! तो तुमने पहले ही से साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहा कि किसी का नसीब ज़ोर मार रहा है? कौन है वह खुशनसीब? क्या मैं उसका नाम जान सकती हूँ?

ज़ेबु०—क्या बताऊँ, सलीमा! तुम जान कर ही क्या करोगी? वह भी तो इन्सान नहीं रह गया है, उसके उसूलों और खयालों की बुलंदी ने उसे देवता बना दिया है। सल्तनत के दीवानों ने उसके मुल्क के करोड़ों बाशिंदों को हैवान से बदतर बना दिया है, हरे-

भरे गाँवों और जगमगाते शहरों को वीरान कर दिया है; इस लिए उसने उन्हीं ग़रीबों और मज़लूमों की खिदमत पर अपनी तमाम ज़िंदगी निसार कर दी है। उसकी ज़िंदगी का एक-एक लमहा आज उसके मुल्क की धरोहर है, उस पर न उसका खुद का कोई इख्तियार है और न किसी और का कोई हक! सच तो यह है कि वह बहुत ऊपर है और मैं बहुत नीचे! क़िस्मत ने आज इन्सानियत को—हम दोनों के बीच की सतह को—मिटा दिया है, जहाँ इन्सान से इन्सान बराबरी के नाते खुले दिल से मिल सकता था! और, इस सब का सबब है सल्तनत की हवस, दूसरों को गुलाम बना कर खुद शाह बनने की ख्वाहिश, जिसकी आग पिछले हज़ारों शाहंशाहों की तरह मेरे वालिद के दिल में भी ज़ोरों से धधक रही है। मैं उसमें आज़ादी को, मुहब्बत को और इन्सानियत को जल कर ख़ाक होते देखती हूँ, तो मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाता है!

सलीमा—मैं समझ गई, शाहज़ादी, कि आप का मतलब दक्खिन के बागी काफ़िर शिवाजी से है। अफ़सोस! आपके दिल ने बड़ी ही मुश्किल मंज़िल पर कदम रखा है।

ज़ेबु०—बाग़ी और काफ़िर! कितने बेदर्द लकब हैं, एक ऐसे इन्सान के लिए जो ईमानदारी से अपने उसूलों के लिए हथेली पर सर लिये फिरता है! मैं फिर कहती हूँ सलीमा, कि यह सारा भेद-भाव इन्सान की हैवानी हवस ने, दौलत और सल्तनत के पागलपन ने खड़ा किया है। जो आदमी अपने ईमान का पक्का है

और खुदा की मज़लूम खलकत की ख़िदमत पर अपनी ज़िंदगी निसार कर सकता है, वह कभी काफ़िर नहीं कहा जा सकता और जो बहादुर अपने मुल्क की आज़ादी के लिए, बेइंसाफ़ी के ख़िलाफ़, जंग छेड़ने को बेकरार हो उठता है, उसे बाग़ी कह कर पुकारना हिमाकत के सिवा और कुछ नहीं। मैं सच कहती हूँ सलीमा, अगर आज मेरे वालिद की जगह शिवाजी होते तो मेरा दिल उनके ख़िलाफ़ भी बग़ावत करता। अब रही मुश्किल मंजिल, सो ज़ेबुन्निसा की रगों में उन मुग़लों का खून बहता है, जो मौत और तक़लीफ़ों से दिन-रात हँस-हँस कर मुठ-भेड़ किया करते थे और जिनमें दौलत और सल्तनत की सड़ान ने बुज़दिली नहीं पैदा की थी। मैं उन बेग़ैरत औरतों में नहीं हूँ, जो दिन में दस बार दिल और ईमान का सौदा करती हैं और मुश्किल और आसान देख कर करती हैं।

सलीमा—नाराज़ न हो शाहज़ादी! आज जो हक़ का जल्वा देख रही हूँ, उसका क़यास मैंने कभी ख्वाब में भी न किया था! इसी से मैं, जो कुछ ज़बान पर आया, कह गई। मेरी नादानी के लिए मुझे मुआफ़ करो! मैं जी-जान से तुम्हारे हुक्म की बंदी हूँ! हुक्म करो कि मैं तुम्हें मंज़िले-मक़सूद तक पहुँचाने में किस तरह मदद करूँ; किस तरह शिवाजी को तुम से........

ज़ेबु॰—(ठंढी साँस लेकर) यह नामुमकिन है, सलीमा, यह बात मुँह पर न लाओ। हम दोनों के दरमियान बहुत बड़ी-बड़ी दीवारें खड़ी हैं! इन्सान को इन्सान से अलग करने के लिए हज़ारों वर्षों से बड़ी ज़बरदस्त कोशिशें होती आ रही हैं। एक ना-

चीज़ औरत की छोटी-सी ज़िंदगी उन कोशिशों को बेकार करने, उन दीवारों को ढहाने के लिए कैसे काफ़ी हो सकती ? तड़प-तड़प कर और घुल-घुल कर धीरे-धीरे जान देने के सिवा चारा ही क्या है ? ज़िंदगी बेवसी ही का दूसरा नाम बन गई है। दिल धीरे-धीरे बुझ रहा है। तमन्नाएँ फ़ना होती जा रही हैं। एक छोटी-सी ख्वाहिश रह गई है कि उनकी कुर्बानियाँ उन्हें जंगे-आज़ादी में कामयाब बनावें और मेरी हसरतों का ख़ून एक दिन इस मुल्क में इत्तफ़ाक़ का एक ऐसा जज़्बा पैदा करे कि जिससे सैकड़ों वर्षों से एक दूसरी को अपना दुश्मन समझनेवाली क़ौमें तहेदिल से गले मिलकर एक हो जावें !

सलीमा—मगर मैं बदनसीब तुम्हारे क्या काम आई शाहज़ादी ! तुम्हारी ये बातें सुनकर तो इस महलसरा में ज़रा भी ठहरना बुरा मालूम होता है ! ख्वाहिश होती है कि गले में कफ़नी डालकर निकल जाया जाय।

ज़ेबु०—तुम आज़ाद हो सलीमा, तुम चाहे जहाँ जा सकती हो। मगर मैं ठहरी शाहज़ादी ! मैं तो इसी क़फ़स में घुल-घुल कर जान देने को हूँ। मुझे और कुछ नहीं कहना सलीमा ! मैं किसी से कुछ नहीं चाहती। उनसे भी मुझे कोई तमन्ना नहीं। जब तक ज़िंदा रहूँगी ख़ुदा से सिर्फ यह दुआ माँगा करूँगी कि वह जहाँ भी रहें, ख़ैर से रहें !

सलीमा—मुझ से तो कुछ ख़िदमत लो शाहज़ादी ! मुझे भी कोई काम बताओ। कोई ऐसा रास्ता दिखाओ, जिसमें मेरी

ज़िंदगी को कुछ राहत मिल सके और तुम्हें भी कभी-कभी कुछ खुशी हासिल हो।

ज़ेबु०—तुम्हारा यही ज़िद है सलीमा, तो जाओ। मेरे लिए इतनी तकलीफ उठाना कि कभी-कभी उनकी ख़बर मुझे दे जाया करना। मैं उन्हें दुबारा देख भी न सकी। मेरे वालिद ने उस शेर को धोखे से क़ैद करना चाहा था, पर वह पिंजरे से निकल भागा। मुझे यह भी पता नहीं कि वे अब किधर जंगल जंगल मारे-मारे फिर रहे होंगे और बादशाही फ़ौजों से बच कर वे कैसे दक्खिन पहुँच पायँगे।

सलीमा—अच्छी बात है शाहज़ादी! मैं तुम्हारे लिए जोगिन बनूँगी, दर-दर घूम-घूम कर शिवाजी के हाल-चाल मालूम करूँगी और कभी-कभी तुम्हारी ख़िदमत में हाज़िर हुआ करूँगी। अच्छा, तो अब चलूँ। इस महलसरा में अब दम घुटता है।

ज़ेबुन्निसा—जाओ प्यारी सलीमा! ख़ुदा तुम्हें तुम्हारे इस सलूक का बदला दे। मेरी क़िस्मत में तो यही कैदख़ाना लिखा है।

(सलीमा का प्रस्थान)

जेबुन्निसा—अभी फूफी के लौटने में देर है। तब तक और एक बार अपनी ज़िंदगी का गीत गा लूँ।

(जेबुन्निसा 'तन महल की कैद में है' आदि गीत गाती है।
गीत समाप्त करके आँखें पोंछती है)

ज़ेबु०—ख़ुदा का शुक्र है कि फूफी अभी तक नहीं आई। अगर आकर सुन लेतीं तो गीत के मानी पूछ-पूछ कर तंग कर

डालतीं। कोई किसी को कैसे बताए कि दुखी दिल के जज़्बात के मानी समझने के लिए दिल में दर्द पैदा करने की ज़रूरत होती है; लफ्ज़ों पर बहस करके आज तक किसने किसी के दिल का हाल जाना है?

(जेबुन्निसा का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—प्रतापगढ़। जीजाबाई बालों में कंघी कर रही हैं]

जीजाबाई—भवानी की कृपा से मेरा शिवा मुग़लों की नाक के नीचे से सुरक्षित निकल आया। इससे ज्ञात होता है कि अब जननी जन्म-भूमि के दिन अवश्य फिरेंगे।

(नेपथ्य में गान)

खेल आज आशा की फाग!
सूर्य सुहाग लिए है आया,
दिशि-दिशि में भैरव-स्वर छाया,
विहगों ने जय-गान सुनाया!
अब तू सकल निराशा त्याग!
खेल आज आशा की फाग!

महाराष्ट्र की भूमि निराली,
पी-पीकर लोहू की लाली,
लाल बनी, हँसती मतवाली।

लगी आज प्राणों में आग !
खेल आज आशा की फाग !

जीजाबाई—यह तो अकाबाई का स्वर सुनाई देता है।

(अकाबाई का प्रवेश)

अकाबाई—नमस्कार, माताजी !

जीजाबाई—आओ अकाबाई ! आज पौ फटते ही किधर निकल पड़ीं ?

अकाबाई—सुना है, भैया शिवाजी लौट आए हैं और मुग़लों ने फिर महाराष्ट्र की छाती पर तांडव-नृत्य प्रारंभ करने का आयोजन किया है। इसलिए माँ, मैंने भी अपना काम प्रारंभ कर दिया है। नित्य पौ फटते ही घर से निकल पड़ती हूँ। गाँव-गाँव जाती हूँ। माँ, बहनों और बहुओं से उनके बेटे, भाई और पति माँ के चरणों में बलि होने को माँगती हूँ। यही मेरा नित्य-कर्म है।

जीजा—धन्य हो, अकाबाई ! तुम्हारे कार्य का महत्त्व अतुलनीय है। यह देश तुम्हारे ऋण से कभी उऋण न हो सकेगा।

अकाबाई—मेरा इसमें क्या है, माताजी ! यह तो स्वामी रामदास की लगाई लगन है। मैं तो उनकी आज्ञा का पालन मात्र करती हूँ। अच्छा जाऊँ, अभी बहुत कार्य करना बाकी है। प्रणाम !

(अकाबाई का गाते हुए प्रस्थान)

जीजाबाई—(पूर्व दिशा की ओर देखती हैं) वह हमारा सिंहगढ़ है। बाल-रवि के प्रकाश में ऐसा दिखाई दे रहा है जैसे हाल का दिया हुआ अंडा। सिंहगढ़ आज मुग़लों के अधिकार में है। जीजाबाई का स्वाभिमान, संपूर्ण महाराष्ट्र का जात्यभिमान, इसे सहन नहीं कर सकता।

(शिवाजी का प्रवेश और जीजाबाई के चरण छूना)

जीजा—बेटा, मैं तुमसे एक भीख माँगती हूँ।

शिवाजी—भीख क्यों? आज्ञा दो, माँ! तुम्हारे लिए मैं आसमान के तारे तोड़ने का भी यत्न कर सकता हूँ।

जीजा—तुम अभी एक संकट से मुक्त हुए हो, मैं फिर तुम्हें दूसरे संकट में डाल रही हूँ। माँ होकर भी मैं कैसी निष्ठुर हूँ, बेटा!

शिवाजी—तुम्हारी आज्ञा के पालन में आने वाला एक-एक संकट मेरे लिए भगवान का आशीर्वाद होगा।

जीजा—अच्छा, तो देखो, वह सामने क्या है?

शिवाजी—सिंहगढ़?

जीजा—उस पर किसका झंडा फहरा रहा है?

शिवाजी—समझ गया, माँ! किंतु उसका किलेदार उदयभानु साक्षात् राक्षस है।

जीजाबाई—तो तुम डरते हो शिवा!

शिवाजी—डर! डर नहीं माँ! मैं केवल शत्रु की शक्ति का

हिसाब लगा रहा था। ज़रा भी चिंतित न हो। तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होगी।

(तानाजी मालुसुरे का प्रवेश और जीजाबाई के चरण छूना)

जीजा—यशस्वी हो, बेटा!

शिवाजी—तुम खूब आए तानाजी! माँ की एक माँग है। तुम भी तो उनके बेटे हो! क्या तुम उनकी अनुरोध-रक्षा में भाग न लोगे?

तानाजी—क्यों नहीं? कहो माँ क्या चाहिए?

जीजाबाई—मैं आज से तीन दिन के भीतर सिंहगढ़ पर मुगलों के झंडे के स्थान पर महाराष्ट्र का भगवा झंडा फहराते देखना चाहती हूँ।

तानाजी—ऐसा ही होगा, माँ!

शिवाजी—अच्छा, यह तो बताओ, आज तुम आए किस काम से थे?

तानाजी—अब उस काम का क्या ज़िक्र करूँ?

जीजा—फिर भी बताओ तो।

तानाजी—अपने पुत्र के विवाह का निमंत्रण देने आया था। हम सैनिकों का जीवन सदा ही कच्चे धागे से बँधी तलवार की धार के नीचे रहता है, माँ! इसीलिए इतनी शीघ्रता में ही विवाह रच डाला। तेल भी चढ़ गया! किंतु अब……

जीजा—अरे! मुझे तो यह मालूम ही न था, अन्यथा विवाह के बाद ही सिंहगढ़……

तानाजी—नहीं, माँ ! जन्मभूमि की पुकार सुनकर सांसारिक माया-ममता के कोमल स्वर सुनने का अवकाश हम सैनिकों को नहीं रहता। तानाजी पहले माँ जीजाबाई का ऋण उतारेगा, पीछे लड़के का विवाह होता रहेगा। एक क्षण भी नष्ट न कर मैं अभी सिंहगढ़ जाता हूँ। (चरण छूता है) आशीर्वाद दो, माँ ! मुझे सफलता प्राप्त हो।

जीजाबाई—तुम्हारी विजय हो, बेटा !

शिवाजी—अच्छा, तो चलो, आक्रमण की तैयारी की जाय।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[स्थान—सिंहगढ़ की तलहटी। समय अर्धरात्रि। तानाजी मालुसुरे और एक ग्रामीण बात कर रहे हैं]

ग्रामीण—तुम न जाने क्या जादू जानते हो कि बिना अपना नाम-गाँव बताए मुझे यहाँ तक घसीट लाए !

तानाजी—मैं एक आदमी हूँ और तुम्हारा दुश्मन नहीं हूँ, इतना जानना क्या काफ़ी नहीं है ? (थोड़ी अफ़ीम निकाल कर देता है) लो थोड़ी अफ़ीम और खाओगे। ऐसी वस्तु, भैया, स्वर्ग में भी नहीं मिलती। राजपूतों ने इतने भयंकर युद्ध इसी काली माई के ज़ोर पर जीते हैं।

ग्रामीण—भैया, तुमने काफ़ी खिला दी है! अब और नहीं! (तानाजी अफ़ीम जेब में रख लेते हैं) तुम यह तो बताओ कि तुम हो कौन?

तानाजी—अब झूठ बोलने की ज़रूरत नहीं! मैं शिवाजी का एक सिपाही हूँ!

ग्रामीण—अरे बाप रे, तब तो तुम मुझे क़त्ल कर दोगे!

तानाजी—क्यों!

ग्रामीण—इसलिए कि मैं मुग़लों के राज में रह रहा हूँ।

तानाजी—तुम्हें किसीने बहका दिया होगा। तभी तुम शिवाजी को ठीक-ठीक नहीं जानते भैया! वे तो किसानों की ढाल हैं! उन्होंने तो अपना सारा जीवन ही गरीबों के कष्ट दूर करने को अर्पित कर रखा है! फिर भला उन्हीं के सिपाही गरीबों पर अत्याचार कैसे कर सकते हैं!

ग्रामीण—तब तो भैया हमारी जान भी हाज़िर है उनके लिए!

तानाजी—मुझे तुम्हारी जान नहीं चाहिए! तुम सिंहगढ़ के पुराने अधिवासी हो, इसलिए सिंहगढ़ के विषय में मैं तुम से कुछ बातें जानना चाहता हूँ!

ग्रामीण—अच्छी बात है! पूछो भैया!

तानाजी—सिंहगढ़ में अभी कितनी सेना है।

ग्रामीण—यही कोई १८०० सैनिक होंगे, लेकिन किलेदार उदयभानु पूरा दैत्य है! सुनते हैं एक बार के कलेवे में वह डेढ़ भेड़ और १० सेर चावल खाता है! उसका एक नर-हिंसक हाथी

है, जिसका नाम चंद्रावली है। उदयभानु के १८ पत्नियाँ हैं और पूरे एक दर्जन जवान लड़के! बाप से भी तगड़े। उसके सहायक सिद्दी हिलाल के ६ पत्नियाँ हैं और वह एक बार में एक भेड़ और आधा मन चावल खाता है।

तानाजी—मालूम होता है अफ़ीम ज़्यादा ज़ोर कर रही है।

ग्रामीण—नहीं भैया, सच झूठ हम क्या जानें! हमने तो यही सुना है!

तानाजी—अच्छा यह तो बताओ! किले की किस दीवार की तरफ़ पहरा ढीला रहता है!

ग्रामीण—बस यहीं जहाँ हम खड़े हैं! यह स्थान ही ऐसा कठिन है कि यहाँ से किसी प्रकार का हमला सफल नहीं हो सकता, न यहाँ से कोई किले पर चढ़ ही सकता है।

तानाजी—बस, मैं यही जानना चाहता था! चलो, तुम्हें पहुँचा आऊँ! किसी से कुछ कहना नहीं! नहीं तो फिर पछताओगे।

(दोनों का एक ओर से प्रस्थान और दूसरी ओर से तानाजी के भाई सूर्याजी का कुछ सैनिकों के साथ प्रवेश)

सूर्याजी—मावल बंधुओ, आज हमारी परीक्षा का दिन है! तानाजी, अपने लड़के का ब्याह छोड़ कर आज यह दूसरा ही ब्याह रचाने आए हैं। (सिंहगढ़ की ओर इशारा कर के) आज इस

चट्टान पर हमें प्राण देकर भी विजय पानी है ? हम लोग गिनती में कुल १००० मावली हैं किंतु……

एक सैनिक—तानाजी और सूर्याजी की छाया जब तक हम पर है, हम एक हज़ार ही एक लाख हैं।

(तानाजी का पुनः प्रवेश, हाथ में एक गोह है)

तानाजी—आगए भैया सूर्याजी, आज हमारी अग्नि-परीक्षा है। आज मेरे बाल्य-बंधु शिवाजी ने मुझ से मित्रता का मूल्य माँगा है। उनका जैसा स्नेह और विश्वास इस अधम सहचर पर रहा है, उसका बदला जीवन की बलि देकर भी नहीं चुकाया जा सकता। आओ, एक बार हम गाढ़ालिंगन में भूत, भविष्य को भूल जावें फिर न जाने माँ-जाये दोनों भाई एक दूसरे का मुँह देखने को ज़िंदा रहें या न रहें।

(तानाजी और सूर्याजी गले मिलते हैं)

सूर्याजी—भाई तानाजी! अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का तुमने क्या साधन सोचा है ?

तानाजी—आज की विजय इसी गोह की कृपा पर निर्भर है। इसकी सहायता से हमने २७ गढ़ जीते हैं, आज २८वें की बारी है! आओ पहले इसकी पूजा कर लें।

(तानाजी और सूर्याजी गोह पर रोली छिड़कते और अक्षत डालते हैं, अन्य सब हाथ जोड़ते हैं)

तानाजी—देवि, आज हमें फिर विजय प्रदान करो। हमारे प्रयत्नों की सफलता तुम्हारी दृढ़ता पर निर्भर है। (सूर्याजी से)

देखो सूर्याजी, इस सामने वाले स्थान पर मैं गोह को फेकूँगा। यह स्थान ऐसा भयंकर है कि शत्रु ने उसे दुर्गम समझ कर इस ओर पहरा भी नहीं रखा। गोह किले की दीवार के उच्चतम स्थान पर पंजे गड़ा कर चिपक जावेगी ! हम उससे बँधी रस्सी के सहारे इस भयंकर अँधेरी रात में किले के भीतर जाकर उसका द्वार खोल देंगे !

एक सैनिक—किंतु सैनिक जाग पड़े तो !

तानाजी—तो क्या होगा, मावले कहीं मौत से डरते हैं ! आज यदि हम जीते रहे तो सिंहगढ़ पर भगवा झंडा फहरा कर रहेंगे और यदि मर गए तो मावलों के साहस और शौर्य की अमिट लकीर भारतीय इतिहास के हृदय पर अंकित कर जायेंगे । चलो, अब हम अपना कार्य आरंभ करें।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

[स्थान—सिंहगढ़। तानाजी के शव के पास शिवाजी जीजाबाई, सूर्याजी मालुसुरे तथा अन्य सरदार खड़े हैं]

शिवाजी—अपने बाल-मित्र तानाजी के शव पर मुझे आँसू बहाने पड़ेंगे, यह मैंने कभी न सोचा था। हम दोनों ने एक-दूसरे को

अपना चिर-सहचर जाना था। कभी यह कल्पना नहीं की थी कि यह जोड़ी बीच ही में बिछुड़ जायगी। सिंहगढ़ की प्राप्ति से मुझे जितना आनन्द मिला, उससे कहीं अधिक दुःख तानाजी की वीर-गति-प्राप्ति से हुआ है! गढ़ हमारे हाथ लगा है, किन्तु हमारा सिंह सदा के लिए सो गया! जिसके साथ मैं बचपन में वन-वन नंगा घूमा था, जिसके साथ यौवन के ऊषाकाल में मैंने स्वराज्य-साधना का स्वप्न देखा था, आज उसे मैंने सदा को गँवा दिया! माँ, आज मैं वास्तव में लुट गया।

जीजाबाई—धैर्य रखो, बेटा! मुझे भी आज इतनी व्यथा हो रही है, जितनी संभाजी की मृत्यु पर भी नहीं हुई थी। मैं तानाजी को अपना सगा बेटा समझती थी। वह मेरा ही नहीं, माँ जन्मभूमि का भी लाड़ला लाल था। वह स्वदेश का सच्चा सेवक और अनन्य पुजारी था। वह जन्मभूमि ही के लिए जनमा, उसी के लिए जिया और उसी के लिए मरा। उसका बलिदान मुक्ति-पथ पर प्रतिक्षण बढ़ते हुए महाराष्ट्र को उत्साह और नवजीवन की प्रबल प्रेरणा देगा।

शिवाजी—वह नर-केसरी हाथी को भी पछाड़ देता था। अब उसके स्थान को कौन पूरा करेगा?

जीजाबाई—निराश न हो बेटा! यह भूमि वीर-प्रसू है! तानाजी की अजरामर आत्मा प्रत्येक मराठा-वीर के हृदय में अपनी शक्ति संचारित करती रहेगी। और फिर तानाजी के भाई, ये सूर्याजी भी तो हैं। ये क्या उनसे कम हैं? आज यदि ये न

होते तो तानाजी का बलिदान भी सिंहगढ़ पर से मुग़लों के झंडे को न हटा पाता।

सूर्याजी—नहीं माँ, भैया से मेरी क्या तुलना! कहाँ सूर्य और कहाँ दीपक! उनकी वीरता वास्तव में अतुलनीय थी! वह दृश्य याद कर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं; जब उदयभानु ने चन्द्रावली हाथी को तानाजी पर छोड़ दिया था! महावत ने हाथी को खूब शराब पिला दी थी! ऐसा मालूम हुआ मानों साक्षात् काल ही तानाजी पर आक्रमण करने आ रहा है। पर, वाह तानाजी, तलवार के एक ही वार से हाथी का काम तमाम कर दिया! वह सिद्दी हिलाल! अपनी पत्नियों को तलवार से काट कर तानाजी से लड़ने आया और मारा गया। फिर उदयभानु के एक-एक कर सभी लड़के तानाजी की तलवार के शिकार हुए। अन्त में राठौर वीर उदयभानु अपनी पत्नियों को मार कर स्वयं तानाजी से द्वन्द्व युद्ध करने आया! पूरे दो घंटे तक दोनों सिंह घोर युद्ध करते रहे और लड़ते-लड़ते दोनों चिर निद्रा में सो गए!

शिवाजी—यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है! हमारे ही देश के वीर पुरुषों का बल स्वतंत्रता के साधकों के मार्ग में बाधक होता है!

जीजाबाई—फिर क्या हुआ?

सूर्याजी—तानाजी के निधन के बाद हमारे साथियों का साहस छूट गया! जिस स्थान पर गोह की सहायता से एक सैनिक को किले पर चढ़ा कर हमने रस्सियों की सीढ़ी तैयार

की थी उसी ओर से हमारे सैनिक भागने लगे। हम लोग कुल ३०० आदमी ही किले में पहुँच पाये थे और क़िले में राजपूतों की संख्या बहुत ज्यादा थी!

जीजा—तो तुमने किस जादू से उन्हें परास्त किया।

सूर्याजी—मैं सीढ़ी के पास खड़ा हो गया और उसे अपनी तलवार से काटते हुए बोला—कोई भी मावला बाहर नहीं जा सकता। मैंने कहा—क्या तुम अपने पिता का अंत्येष्टि संस्कार किए बिना ही चले जाओगे—क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारे पिता को चांडाल जंगल में फेंक आवें और उनकी लाश जंगली जानवरों का खाद्य बने या शत्रु दया करके उसे जला दे। तुम जैसे वीर-पुत्रों के जीते जी, मर जाने के बाद, तुम्हारे स्वाभिमानी पिता को शत्रु की कृपा का मुहताज बनना पड़ेगा। तानाजी को सारा मावल-प्रदेश अपना पिता मानता है। तुम कैसे कपूत हो कि आज उनकी लाश का अपमान कराने पर उतारू हो गए हो, केवल प्राणों के मोह से ही न! पर प्राण तो अब वैसे भी नहीं बचेंगे—बाहर जाने का मार्ग तो रहा ही नहीं है। रस्सी कट चुकी है। जन्मभूमि के लिए युद्ध करते हुए प्राण क्यों न दें!

जीजाजी—शाबास, सूर्याजी! तुमने प्राण-प्रेरक का कार्य किया। अच्छा फिर क्या हुआ?

सूर्याजी—हम तीन सौ मावलों में तानाजी की लाश के अपमान की बात सुन कर जोश का समुद्र उमड़ पड़ा। हम राजपूत सेना पर टूट पड़े। अब हमें अपने प्राणों का ज़रा भी मोह नहीं

था। मैं लड़ते-लड़ते फाटक तक पहुँच गया और द्वार खोल ही दिया। फिर क्या था, हमारी सेना अन्दर आ गई।

शिवाजी—धन्य हो सूर्याजी ! तुम दोनों भाइयों का नाम भारत की स्वाधीनता के इतिहास में अमर रहेगा। मेरी शक्ति तो तुम्हीं लोग हो। 'लड़े सिपाही नाम सरदार का'—यह बात सोलहों आने सत्य है। एक-एक सैनिक की वीरता, एक-एक भावुक का आत्म-बलिदान बूँद-बूँद में एकत्र होकर, अगणित सिंधु भर देता है। तब जाकर किसी दिन स्वतंत्रता की साधना संपूर्ण होती है। सिंधु की ऊपरी सतह पर लोग श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते हैं, पर तल में छिपी हुई बूँदों को कोई नहीं देखता।

जीजाबाई—अच्छा तो अब हमें गढ़ पर अपना झंडा स्थापित करना चाहिए।

शिवाजी—माँ, यह कार्य तुम्हारे ही हाथों से होना चाहिए।

(जीजाबाई भगवा झंडा स्थापित करती हैं, सब झंडे के आगे नत-मस्तक होते हैं। फिर सब झंडा-गान गाते हैं)

(गान)

भगवा झंडा जग से न्यारा !
है हमको प्राणों से प्यारा !

इसे प्राण देकर पाया है !
हृदय-रक्त से रँगवाया है,
यह अमरत्व लिए आया है,

राष्ट्र-गगन का है यह तारा!
भगवा झंडा जग से न्यारा!
इसे देख होते मतवाले!
पीते हैं साहस के प्याले!
माँ पर शीश चढ़ाने वाले!
यह है नवजीवन की धारा!
भगवा झंडा जग से न्यारा!
तन-मन-प्राण भले लुट जावें,
इसका मान न जाने पावे,
अखिल विश्व में यह फहरावे!
यह भारत-यश का उजियारा!
भगवा झंडा जग से न्यारा!

[पटाक्षेप]

*

* *

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

[स्थान--आगरा का लाल किला। औरंगज़ेब और दिलेरखाँ बातें कर रहे हैं]

औरंगज़ेब—मुझे अफ़सोस है, राजा जयसिंह ने भी मेरे साथ दग़ा किया। न वह शिवाजी की अक्ल ठिकाने ला सके और न बीजापुर ही को सर कर सके।

दिलेरखाँ—बादशाह सलामत, इसमें राजा जयसिंह का नहीं बादशाह औरंगज़ेब का अपना क़सूर है। आप हाथ में कुरान शरीफ़ लेकर कहिए, क्या आपने उन पर पूरा यकीन किया था ? शिवाजी के निकल भागने के बाद क्या आपने उन्हें जंग जारी रखने की पूरी सहूलियतें थीं ?

औरंगज़ेब—जब शिवाजी पंजे में आकर भी निकल गया तो उसके साथ सुलह कर लेना ही मैंने ठीक समझा। राजा जयसिंह और आपकी भी तो यही मंशा थी। लेकिन शिवाजी ने फिर धोखा दिया और सुलह करने के बाद सिंहगढ़, पुरंदर वग़ैरह किले ले लिए, अपने जहाज़ी बेड़े से जंजीरा पर हमला किया और सूरत को दुबारा लूटा। यह सब किसके इशारे से होता रहा ?

दिलेरखाँ—इस बार भी पहल हमारी ओर से हुई। प्रतापराव गूजर को सुलह के मुताबिक ५००० घुड़सवारों के साथ शिवाजी ने मुग़ल-फ़ौज में भेजा था। आपने मुझे लिखा कि उसे गिरफ्तार कर लिया जाय।

औरंगज़ेब—और तुम ने उसे चला जाने दिया। शिवाजी न जाने क्या जादू जानता है, जो दिलेरखाँ जैसे बहादुर और फ़रमाबरदार सिपहसालार को भी चरका दे सका!

दिलेरखाँ—बादशाह सलामत, दिलेरखाँ इनसान है। वह जंग में क़यामत से भी लोहा ले सकता है, मगर वह साज़िश में शामिल होना गुनाह समझता है। प्रतापराव, आपका हुक्म मेरे पास आने के पहले ही, मुग़ल डेरा छोड़ कर चला गया था। अगर वह उस वक्त वहाँ होता भी, तो भी जहाँपनाह का हुक़्म शायद मैं नहीं मानता।

औरंगज़ेब—दिलेरखाँ, तुम्हारी इतनी जुर्रत!

दिलेरखाँ—जिसने मुग़ल सल्तनत की शान रखने के लिए सारी उम्र लड़ाई के मैदान में गुज़ारी, जिसने बहादुर राजपूतों, होशियार मराठों और बेख़ौफ़ पठानों का बीसियों बार सर नीचा किया है, उस दिलेरखाँ का बादशाह औरंगज़ेब पर कुछ हक़ है; उसी हक़ से वह उसके हुक़्म की नाफ़र्मानी कर सकता है। लेकिन वह भी मुग़ल सल्तनत की सेहत ठीक रखने के लिए।

औरंगज़ेब—यानी!

दिलेरखाँ—यानी यही कि सल्तनत हमेशा रियाया के यक़ीन के पाओं पर कायम रहती है, न कि मक्कारी, दग़ा, धोखेबाज़ी, साज़िश और क़त्लों के बाजुओं पर।

औरंगज़ेब—दिलेरखाँ, शायद तुम ठीक कह रहे हो। लेकिन, औरंगज़ेब को आज चारों तरफ़ अपने ख़िलाफ साज़िश नज़र आ रही है। राजा जयसिंह और तुम्हें वापस बुलाकर मैंने शाहज़ादा मोअज़्ज़म और राजा जसवंतसिंह को दक्खिन भेजा। लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि राजा जसवंतसिंह भी शिवाजी से मिल गया है। उसे शुरू से ही औरंगज़ेब से कीना रहा है। उसने तख्ते-ताऊस पर औरंगज़ेब को न बैठने देने के लिए दारा की तरफ से किस बहादुरी और ज़िंदादिली से जंग किया था! मैंने फिर भी उसे मौक़ा दिया। पर जान पड़ता है कि अब मोअज़्ज़म जसवंतसिंह और शिवाजी मिलकर मुझे तख्त से उतारने की साज़िश कर रहे हैं।

दिलेरखाँ—ग़लत, बिलकुल ग़लत! आपको ख्वाहमख्वाह सबमें अपनी ही तसवीर नज़र आरही है।

औरंगज़ेब—मैं जसवंतसिंह को बुलाकर अफग़ानिस्तान भेज रहा हूँ। वहाँ उसे साज़िश करने का मौक़ा न मिलेगा और वह घमंडी राजपूत अपनी बहादुरी सरकश पठानों के साथ आज़माता रहेगा। कहो दिलेरखाँ, तुम्हारी क्या राय है?

(एक दूत प्रवेश करके सलाम करता है)

औरंगज़ेब—क्या ख़बर है?

दूत—मिर्जा राजा जयसिंह की दक्खिण से आते समय रास्ते में मृत्यु हो गई।

औरंगज़ेब—मैं यह क्या सुन रहा हूँ! मुग़ल सल्तनत की ताक़त मिर्जा राजा जयसिंह! वही जयसिंह जिन्होंने लिखा था कि शिवाजी ने जो दग़ा किया है उसका बदला लिये बिना उन्हें चैन न पड़ेगी। वे उसके साथ अपनी लड़की की शादी करने की ख्वाहिश ज़ाहिर कर, बल्कि शादी रचकर मंडप में अपनी लड़की को बेवा बना देंगे?

दिलेरखाँ—जी हाँ—वही जयसिंह! जो मुग़ल सल्तनत के लिए अपना मज़हब, मुल्क, इज्ज़त सभी कुछ कुर्बान करने को तैयार रहते थे! जहाँपनाह ने उन पर भी शक किया—वह ऐसी चोट कैसे बरदाश्त कर सकते थे?

औरंगज़ेब—दिलेरखाँ!

दिलेरखाँ—जहाँपनाह!

औरंगज़ेब—तुम मेरे बचपन के साथी हो!

दिलेरखाँ—हाँ-हूँ!

औरंगज़ेब—मुझे रास्ता दिखाओ!

दिलेरखाँ—आप ख़ुद देख सकते हैं, अगर आप यक़ीन करना सीखें। मेरी बात मानिए जहाँपनाह, हिंदुओं और मुसलमानों का, अपनों का और ग़ैरों का, यकीन करना सीखिए। तलवार को फेंक कर मुहब्बत की सल्तनत क़ायम कीज़िए। हम मुट्ठी भर मुसलमान करोड़ों हिन्दुओं पर तलवार के ज़ोर से ज़्यादा दिनों

तक हुकूमत नहीं कर सकते। उन्हें तो मुहब्बत ही से जीता जा सकता है। वे दरिया-दिल हैं, वे खुद भूखे रह कर परदेशियों के लिए थाली परोसे खड़े रहते हैं। ऐसी क़ौम के अहसान को मत भूलो, औरंगज़ेब। उनके भाई बनो, बादशाह नहीं! तब तुम देखोगे कि तुम तख्ते-ताऊस पर नहीं, उनके दिलों के सिंहासन पर बैठ कर हुकूमत कर रहे हो!

औरंगज़ेब—यह सब ठीक हो सकता है दिलेरखाँ, मगर मेरा ख्वाब चूर-चूर हो गया। इस्लाम···

दिलेरखाँ—इस्लाम नहीं कहता, कि ऐ इनसान! तू मुहब्बत और यकीन करना छोड़ दे, इनसानियत से मुँह मोड़ ले और अपने पड़ोसियों की गरदनों पर तलवार चला! अच्छा अब मैं जाता हूँ, जहाँपनाह!

(प्रस्थान)

औरंगज़ेब—औरंगज़ेब की नाव आज भँवर में फँस गई है। मुगल सल्तनत की हद जितनी लंबी-चौड़ी होती जा रही है, भीतर से उसकी ताकत उतनी ही खोखली हो रही है। कमज़ोर आदमी को शराब पिला कर उससे कब तक काम कराया जा सकता है। अच्छा तो क्या अब रास्ता बदलना होगा! (कुछ सोच कर और फिर एकदम आवेग में आकर) नहीं, यह न हो सकेगा। औरंगज़ेब के बाजुओं में अभी ताक़त बाकी है! वह खुद जाकर शिवाजी का नामोनिशान मिटाकर छोड़ेगा। लेकिन, यहाँ भी तो बग़ावत के बीज बोए जा चुके हैं! तब मेरा दक्खिन जाना कैसे

हो सकेगा ? अच्छा, इस दफ़ा बूढ़े सिपहसालार महावतखाँ को भेजा जाय !

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—जंजीरा द्वीप । शिवाजी और मोरोपंत पिंगले परामर्श कर रहे हैं]

शिवाजी—युद्ध के साधनों में धीरे-धीरे क्रांति होती जा रही है। इस युग में केवल प्रबल स्थल-सेना रखने से ही हमारा राज्य सुरक्षित नहीं समझा जा सकता। भारत के पश्चिमी किनारे पर पुर्तगाल-वासी, फ्रांसीसी, डच, अबीसीनियावासी तथा अंग्रेज़ लोग व्यापारियों के छद्म-रूप में आकर अपने पैर जमाते जा रहे हैं और धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। आज उँगली पकड़ी है तो कल पहुँचा पकड़ेंगे। मुझे मुग़लों से इतना भय नहीं, जितना इन फिरंगियों से है !

मोरोपंत—यह क्यों ?

शिवाजी—इसलिए कि मुग़ल भारत में बस गए हैं। वे अब भारत की संपत्ति को विदेश में नहीं ले जावेंगे। इतना ही नहीं, मेरा तो यह भी अनुमान है कि यदि कोई और शक्ति बीच में बाधक नहीं हुई तो एक दिन हिन्दू और मुसलमान भारत को ही

अपनी जन्मभूमि मान कर एक-राष्ट्रीयता के सूत्र में गुँथ जावेंगे। लेकिन यह आशंका भी निराधार नहीं है कि ये विदेशी जातियाँ इन दोनों महान् संस्कृतियों को कभी मिलकर एक न होने देंगी। मेरा यह विचार दृढ़ होता जा रहा है कि हाथ में तलवार ले कर आने वाले विदेशी की अपेक्षा तराज़ू लेकर आने वाला ज्यादा भयंकर है, क्योंकि वह धीरे धीरे विजित देश की संपत्ति अपने देश में पहुँचाने का प्रयत्न करेगा!

मोरोपंत—आप ठीक कहते हैं। खेद है कि हमें इस ओर ध्यान देने का अवकाश बहुत कम मिला। जंजीरा के सिद्दियों से हम तला, घोसाला आदि किले तो पहले ही जीत चुके थे, नागोठना से बाणाकोट तक अन्य सब किले भी हमने धीरे-धीरे ले लिये। बाद में राघो बल्लाल अत्रे की वीरता ने रहे-सहे दंडा और राजपुरी पर भी स्वराज्य-पताका फहरा दी। केवल जंजीरा रह गया, जो हृदय में सदा काँटे की तरह खटकता रहता है।

शिवाजी—किंतु जंजीरा को जीतना इतना आसान नहीं है। बिना पर्याप्त जल-सेना के यह कार्य असम्भव है, यह सोच कर मैंने वाड़ी के सामन्तों को जीत कर सुवर्ण दुर्ग और विजय दुर्ग नाम के समुद्री गढ़ दृढ़ किए और कई दुर्ग नए बनवाए। सुवर्ण दुर्ग विजय दुर्ग, पद्म दुर्ग, अंजनवेल और रत्नागिरि में जहाज़ बनाने का काम भी जारी कर दिया गया है। हमारी जल-सेना के इस संगठन का अधिकतर श्रेय वीरवर कान्होजी आंग्रे का है।

मोरोपंत—तब तो जंजीरा का सूर्य भी अब अस्त ही समझना चाहिए।

शिवाजी—हाँ, अब फ़तहखाँ के पास सिवा हमारी अधीनता स्वीकार करने के और कोई चारा ही नहीं हो सकता।

(एक दूत का प्रवेश और प्रणाम करना)

मोरोपंत—क्या समाचार है ?

दूत—जंजीरे पर हमारे सफल घेरे का परिणाम यह हुआ है कि वहाँ के लोग भूखों मरने लगे हैं और बिलकुल त्रस्त हो गए हैं। फ़तहखाँ ने इस स्थिति में क़िला महाराज को सौंप देने का निश्चय किया, परन्तु सिद्दी संबल, सिद्दी क़ासिम और सिद्दी खैरियत नाम के तीन हबशी सरदारों ने फ़तहखाँ के इस विचार का विरोध किया और उसे गिरफ्तार कर लिया। अब उन्होंने बीजापुर और मुग़ल दोनों ही शक्तियों से सहायता माँगी है।

शिवाजी -हमारा हृदय इन सिद्दियों की वीरता और दृढ़ता पर मुग्ध है। इनसे पार पाना आसान नहीं है। जान पड़ता है, इस बार भी जंजीरा लेने का मेरा प्रयत्न विफल जावेगा।

दूत—सूरत से मुग़ल-सेना चल पड़ी है।

शिवाजी—ऐसी स्थिति में तो हम दोनों ओर से शत्रुओं से घिर जायेंगे। मोरोपंतजी, हमें अब घेरा उठा लेना चाहिए और मुग़लों ने सिद्दियों की जो सहायता की है, उसका बदला सूरत लूट कर लेना चाहिए।

मोरोपंत—जो आज्ञा ! तो मैं प्रस्थान का प्रबंध करूँ ?

शिवाजी—अवश्य !

(मोरोपंत और दूत का प्रस्थान)

शिवाजी—मुट्ठी भर सिद्दियों ने आसमान सिर पर उठा रखा है। जल और स्थल दोनों मार्गों से जब तक संपूर्ण दक्षिण-प्रदेश सुरक्षित न हो जावे, जब तक यह पुण्य-भूमि शत्रुओं के अस्तित्व से शून्य न हो जावे, तब तक स्वराज्य की सीमा का विस्तार व्यर्थ है। ऐसे खोखले राज्य-विस्तार से क्या लाभ ? (जंजीरा-द्वीप की ओर देखते हुए) जंजीरा द्वीप ! तुम मेरी आँखों में सदा खटकते रहोगे ! तुम अपना उद्दंड मस्तक उन्नत किए महाराष्ट्र की विजय-ध्वजा की चुनौती दे रहे हो। मैं अब तक तुम्हारा मान-मर्दन कर चुका होता, किंतु उसमें अनेक बाधाएँ हैं—सूरत की मुग़ल सेना, बंबई के अंग्रेज़, गोआ के पोर्तगीज़, सभी मेरी जल-सेना की उन्नति में रोड़े अटकाते हैं। पोर्तगीज़ों ने मुझे तोपें और शस्त्रास्त्र देते रहने का वचन देकर संधि कर ली है, फिर भी भीतर ही भीतर उनके मन में खिचड़ी पक रही है। ख़ैर, कोई बात नहीं, भवानी की इच्छा हुई तो शिवाजी एक दिन इन सब का हिसाब साफ कर देगा।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—सलहेरि के गढ़ की तलहटी। महावतखाँ अकेला विचारमग्न खड़ा है]

महावत—मोर्चे लगे हुए हैं। इधर मैं गढ़ पर घेरा डाले पड़ा हुआ हूँ उधर इख़लास खाँ मराठों के मैदान की ओर से होने वाले आक्रमण का सामना कर रहा है। किंतु......(रुक कर) महावत खाँ! तूने नूरजहाँ का गर्व खंडित किया था, तूने मेवाड़ के राणा अमरसिंह को युद्ध में परास्त किया था, तूने ही शाहजहाँ को दौलताबाद जीत कर दिया था, किंतु जीवन के इस संध्या-काल में तेरे भाग्य में अपकीर्ति लिखी है।

(एक मुग़ल सैनिक का प्रवेश)

सैनिक—(सलाम करके) सिपहसालार साहब, मराठों के २००० घोड़े मुग़ल फौज ने काट डाले हैं।

महावत—शाबाश बहादुरो! महावतखाँ की कीर्ति को बट्टा न लगना चाहिए। जाओ—

(दूसरे सैनिक का प्रवेश)

दूसरा सैनिक—(सलाम करके) मुझे सरदार इख़लासखाँ ने भेजा है। शिवाजी ने मोरोपंत पिंगले और प्रताप राव गूजर को पूरब और पच्छिम दो तरफ से, मुग़ल फौज पर हमला करने को भेजा है। उन दोनों की फौजें दोनों तरफ से हमला करती हुई बीच में मिल जाने वाली हैं।

महावत—यदि दोनों फौजें मिल गईं तो सर्वनाश हो जायगा। उन्हें मिलने से रोका जाना चाहिए। जाओ।

(दोनों सिपाहियों का प्रस्थान)

महावतखाँ—मैंने भी मेवाड़ की पुण्यभूमि में जन्म-ग्रहण किया था। विश्वविख्यात सीसौदिया वंश का रक्त मेरी भी नसों में प्रवाहित होता है, किंतु मेरा यह अंत ! मुझ जैसे कुल-कलंक संसार में पैदा ही क्यों होते हैं ? मेवाड़ का पतन मेरे ही हाथों से हुआ और अब मैं महाराष्ट्र के सर्वनाश के आयोजन में सम्मिलित होने आया हूँ। वीरवर शिवाजो, तुम भी तो सीसौदिया वंश के रत्न हो। आज तुम्हारे स्वप्नों को धूल में मिलाने के लिए मुझ नराधम का आह्वान हुआ है। संसार में वीरता प्रदर्शित करने का अभिमान भी कैसा भीषण होता है ! झूठे दर्प के कारण मैंने धर्म छोड़ा ही, देश के साथ भी द्रोह किया। मालूम नहीं, मेरे पतन-पथ का अंत कहाँ जाकर होगा !

(तीसरे सिपाही का प्रवेश)

तीसरा सिपाही—(सलाम करके) सिपहसालार साहब ! प्रताप-राव और मोरोपंत पिंगले की फौजें आपस में मिल गई हैं। मुग़ल फौज हिम्मत हार कर भाग खड़ी हुई है।

महावतखाँ—अच्छा ! तुम जाओ (सिपाही का प्रस्थान)। युद्ध-भूमि में महावतखाँ ने आज तक पीठ न दिखाई थी। देश और धर्म को खो देने पर भी मेरी यह ख्याति बची हुई थी। लेकिन मराठों

के इस भयानक मुल्क में, जीवन के अंतिम दिनों में, शायद इससे भी हाथ धोना पड़ेगा !

(इखलासखाँ का प्रवेश)

महावतखाँ—क्यों लड़ाई का क्या हाल है ?

इखलासखाँ—हाल-चाल कुछ नहीं है। अब यहाँ से जल्दी ही कूच करना चहिए। हमारी फौज में सिर्फ दो हज़ार सिपाही बचे हैं—बाकी बीस हज़ार या तो मारे गए या दुश्मन के हाथों गिरफ्तार हो गए।

महावतखाँ—औंध और पट्टा हस्तगत करके मैंने समझा था कि महावतखाँ महाराष्ट्र से भी विजय-श्री प्राप्त करके लौटेगा। किसे पता था कि उस विजय में यह पराजय छिपी हुई थी ! शिवाजी के नाम में न जाने क्या जादू है ! उसका अस्तित्व मराठों में नवीन स्फूर्ति भर देता है। सलहेरि में यदि स्वयं शिवाजी उपस्थित न होते तो निश्चित था कि विजय हमारी ही होती। इखलासखाँ, जीत की अब कोई आशा नहीं रही। घेरा उठा कर अब इन बचे-खुचे आदमियों के साथ औरंगाबाद के लिए कूच करना चाहिए।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[रायगढ़ में एक सजे हुए शामियाने में मराठे सरदार शिवाजी के आगमन की प्रतीक्षा में हैं]

एक सरदार—(दूसरे सरदार से) राज्याभिषेक की प्रारम्भिक विधि में क्या तुम सम्मिलित नहीं हुए ?

दूसरा सरदार—दुर्भाग्यवश मैं उपस्थित न हो सका। जीवन का एक बहुत बड़ा अवसर खो दिया।

पहला सरदार—साक्षात् स्वर्ग का दृश्य था भैया ! आँखें तृप्त हो गईं ! तुम देख न सके, तो सुन ही लो। सफेद पोशाक में छत्रपति शिवाजी महाराज को लिए हुए अष्ट-प्रधान आए। शिवाजी के पीछे राज-माता जीजाबाई थीं और उनके पीछे महारानी तथा अन्य प्रतिष्ठित महिलाएँ ! येसाजी कंक शिवाजी महाराज की दाहिनी ओर बैठे थे; उनके बाद पेशवा मोरोपंत पिंगले। उनके हाथ में घृत-पात्र था। दक्षिण की ओर सूर्याजी मालुसुरे और हम्मीर राव मोहिते दुग्ध पात्र लिए खड़े थे, पश्चिम की ओर रामचन्द्र नीलकंठ ताम्र-पात्र में दही लेकर और उत्तर की ओर रघुनाथ पंत सोने के पात्र में गंगाजल लेकर खड़े थे। दक्षिण-पश्चिम में अन्नाजी दत्तो छत्र लिए थे तथा दक्षिण-पूर्व में जनार्दन पंडित पंखा लिए खड़े थे। उत्तर-पश्चिम

और उत्तर-पूर्व में दत्ताजी पंडित और बालाजो पंडित चँवर लिए उपस्थित थे। शिवाजी के सामने बालाजी आवजी और चिमनाजी आवजी चिटनीस बैठे थे! एक के बाद एक मंत्री ने अपने पात्र की सामग्री शिवाजी महाराज पर डाली। उसके बाद छत्रपति ने ब्राह्मणों, मंदिरों और मस्जिदों को दान दिया। फिर विष्णु की पूजा की गई। तत्पश्चात् शिवाजी ने तलवार, ढाल, तीर तथा अन्य शस्त्रों की पूजा की। वह दृश्य जिसने नहीं देखा उसने कुछ नहीं देखा, उसका जीवन व्यर्थ गया।

दूसरा सरदार—अब महाराज कहाँ गए हुए हैं ?

पहला सरदार—स्नान करने गए थे। सोलह कुमारी कन्याओं ने इत्र से अभिषिक्त करके गरम पानी से स्नान कराकर, उनकी दीप-माला से आरती उतारी थी। वे अब आते ही होंगे। लो, वे आ ही गए।

(सब सरदार खड़े हो जाते हैं, मोरोपंत पिंगले शिवाजी को आसन पर बैठाते हैं। जीजाबाई उनके पास ही अलग आसन पर बैठती हैं। शेष मन्त्री यथायोग्य स्थान लेते हैं, किले पर से तोपें छूटती हैं, दशों दिशाएँ तोपों की गर्जना से गूँज उठती हैं, एक महिला शिवाजी की आरती करती है)

महिला—(आरती करती हुई गाती है)

जय शिव छत्रपते,
भारत भाग्य विधाता, जय जय जय नृपते !
दिव्य तेज से मंडित तुम शिव अवतारी,
महाराष्ट्र-दुख-भंजक, भारत-भय-हारी ।
था अज्ञान अँधेरा, दास्य दैन्य भारी,
राजन्, बिना तुम्हारे, त्रस्त प्रजा सारी ।
तुम स्वातंत्र्य दिवाकर, तुम बन्धन-हर्ता,
आए इस भूतल पर, जग ज्योतित कर्ता ।
पत्र पुष्प श्रद्धा के जनता के मन के,
स्वीकृत करो, प्रवर्तक नूतन जीवन के !

(आरती समाप्त होती है)

जीजाबाई—अच्छा, अब तुलादान होना चाहिए !

(शिवाजी को सोने से तोला जाता है, तोल होने के बाद, शिवाजी, फिर आसन ग्रहण करते हैं)

जीजाबाई—यह सब स्वर्ण ग़रीबों को बाँट दिया जाय ।

मोरोपंत पिंगले—अब काशी के पंडितराज गंगाभट्ट महाराज का राज्य-तिलक करेंगे ।

(गंगाभट्ट आते हैं, शिवाजी उठकर उनके चरण छूते हैं)

गंगाभट्ट—क्षत्रियकुलावतंस तुम्हारा राज्य अमर रहे ! तुम्हारी साधना सफल हो !

(राज-तिलक करके राज-मुकुट मस्तक पर रखते हैं)

मोरोपंत—बोलो, क्षत्रिय कुलावतंस, स्वधर्म संरक्षक, स्वराष्ट्र-संवर्धक महाराजा शिव छत्रपति की जय !

सब—क्षत्रियकुलावतंस, स्वधर्म-संरक्षक, स्वराष्ट्र-संवर्धक महाराजा शिव छत्रपति की जय !

शिवाजी—भाइयो, आपने आज मुझे जो गौरवपूर्ण पद दिया है, उसे मैं आप लोगों की दया ही समझता हूँ। आज जो यह राजमुकुट मेरे मस्तक पर रखा गया है, वह वास्तव में आप लोगों के बलिदानों का ही परिणाम है। मैं तो इस साधना में निमित्तमात्र रहा हूँ। मुझे राजमुकुट की लालसा कभी नहीं हुई—मैं तो इसे जनता-जनार्दन की धरोहर ही मानता हूँ। जिस दिन वह मुझ से अपनी धरोहर माँगे, मैं तत्क्षण वापस देने को तैयार हूँ। हमारे सौभाग्य से माँ जीजाबाई आज उपस्थित हैं, उनके आशीर्वाद की छाया में मैंने स्वराज्य-साधना के लिए तलवार उठाई थी और उन्हीं की आज्ञा से यह राजमुकुट अपने मस्तक पर रख रहा हूँ। मैं इस उत्तरदायित्व को ग्रहण करते समय परमात्मा से बल और आप लोगों से आशीर्वाद की भीख माँगता हूँ कि मैं स्वधर्म, स्वदेश और स्वाभिमान की रक्षा में कभी पीछे न हटूँ।

सब—धन्य हो महाराजा !

शिवाजी—आज इस अवसर पर मैं अपने उन साथियों को नहीं भूल सकता जिनके बलिदान से महाराष्ट्र को यह दिन देखने का अवसर मिला है। बाजी प्रभु, तानाजी मालुसुरे, बाजी-पासलकर और प्रतापराव गूजर जैसे वीर पुरुष आज हमारे बीच में नहीं है ! वे अपना कर्त्तव्य पूरा कर गए—वे सांसारिक ऐश्वर्य की अपेक्षा किए बिना ही जननी जन्मभूमि पर अपने प्राण

चढ़ाकर चले गए। हमें उनके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करना है।

जीजाबाई—अवश्य ही उनके वंशजों को जागीरें दी जानी चाहिए।

शिवाजी—बाजी प्रभु और तानाजी मालुसुरे तथा बाजी पासलकर के वंशजों को जागीरें दी जा चुकी हैं। आज मैं प्रतापराव गूजर का ऋण चुकाना चाहता हूँ। अंबरानी की घाटी में जब बीजापुर के सेनापति बहलोलखाँ को उसने हरा दिया तो अब्दुल करीम ने उससे प्राणों की भिक्षा माँगी और वचन दिया कि फिर मराठों के विरुद्ध शस्त्र न उठावेगा। वीर प्रतापराव ने शत्रु का विश्वास किया और उसे जाने दिया। कृतघ्न बहलोलखाँ ने उपकार का बदला दुबारा पन्हाला पर आक्रमण करके चुकाया। मुझे प्रतापराव के भोलेपन पर क्रोध आया और मैंने कहला भेजा कि बहलोलखाँ की सेना का अंत किए बिना वह मुझे मुँह न दिखावे। उस वीर को यह बात लग गई और उसने आव देखा न ताव, तुरंत ही बहलोलखाँ की सेना पर आक्रमण कर दिया। सहस्रों को मौत के घाट उतार कर वह स्वयं भी वीर-गति को प्राप्त हुआ। मेरी बात की चोट ने महाराष्ट्र के एक स्तंभ को खो दिया। मैं उनके वंशजों को जागीर देता हूँ।

जीजाबाई—और मैं ऐसे वीर-पुत्र की कन्या का विवाह शिवाजी के पुत्र राजाराम से करने का निश्चय करती हूँ।

शिवाजी—उसके बाद हम्मीररावजी मोहिते के प्रति मैं

महाराष्ट्र देश की ओर से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। प्रतापरावजी की मृत्यु के बाद जब महाराष्ट्र-सेना तितर-बितर होकर भाग खड़ी हुई, तब ये अपने मुट्ठी भर साथियों को लेकर अकस्मात् शत्रु-सेना पर टूट पड़े। उससे मराठों की पराजय सहसा विजय में परिणत हो गई। मैं उन्हें महाराष्ट्र की संपूर्ण घुड़सवार सेना का सेनापति नियुक्त करता हूँ।

जीजाबाई—और येसाजी कंक!

शिवाजी—हाँ, मैं इस अवसर पर येसाजी को कैसे भूल सकता हूँ? छाया की भाँति सदा साथ रहने वाले, कवच की भाँति प्रत्येक संकट में मेरी रक्षा करने वाले, यश, कीर्ति और ऐश्वर्य की अपेक्षा किये बिना मूक निश्छल भाव से जननी-जन्मभूमि की सेवा करने वाले येसाजी कंक को शिवाजी कैसे भूल सकता है? तुलजापुर के भवानी-मन्दिर में मेरे साथ जिन तीन युवकों ने स्वराज्य-साधना में अपना जीवन अर्पण करने की शपथ ली थी—उनमें से आज केवल येसाजी शेष हैं। शिवाजी की ऐसी कौन-सा सफलता है, जो येसाजी की लगन और वीरता की ऋणी नहीं है?

जीजाबाई—बोलो येसाजी, तुम्हें स्वराज्य-सीमा का कौन-सा और कितना भाग पसंद है? वही तुम्हें जागीर में दिया जाय।

येसाजी—(जीजाबाई के चरण छूकर) माँ, मुझे आपका और भैया शिवाजी का, जो आशीर्वाद और स्नेह प्राप्त है—वह त्रिलोक की संपत्ति से भी अधिक है। जननी जन्म-भूमि की बंधन-मुक्ति के प्रयत्नों में मैं भी तानाजी मालुसुरे और बाजी पासलकर जैसी

मृत्यु पाऊँ—आपका यही आशीर्वाद मेरे लिए सबसे बड़ी जागीर होगी। आपके इस अकिंचन पुत्र ने जागीर भोगने की लालसा से नहीं—माँ के बंधन काटने की इच्छा से तलवार पकड़ी थी। पथ-च्युत न हो जाऊँ—यही वरदान आप से माँगता हूँ।

शिवाजी—धन्य हो, भैया येसाजी ! तुम जैसा निस्स्वार्थ आत्म-त्याग करने वाला व्यक्ति खोजने पर भी संसार में न मिलेगा। आज संपूर्ण महाराष्ट्र के हृदयों पर तुम्हारा अखंड राज्य है और चिरकाल तक रहेगा। फिर भी एक तुच्छ रस्म पूरी करने के लिए अपने बचपन के साथी शिवाजी से कुछ तो भेंट तुम्हें स्वीकार करनी पड़ेगी। लो, यह तलवार मैं तुम्हें भेंट करता हूँ। (शिवाजी येसाजी को तलवार भेंट करते हैं)

येसाजी—(तलवार लेकर सिर पर लगाते हैं) हाँ भैया, यही मेरे लिए उचित उपहार है ! आज मैं बूढ़ा हो चला हूँ—युद्धों में आघात सहते-सहते शरीर का प्रत्येक अंग क्षत-विक्षत हो चुका है—फिर भी यह तलवार पाकर एक नशा सा आँखों पर छा रहा है। (तलवार को एक बार फिर सिर पर लगाते हैं) देवि, तुम्हीं मुक्ति-प्रदायिनी आद्या-शक्ति हो। (अपने स्थान पर बैठते हैं)

जीजाबाई—महाराष्ट्र के एक-एक वीर पर मुझे अभिमान है। उनमें से प्रत्येक के हृदय में स्वयं भवानी निवास करती हैं। मुझे विश्वास है कि हमारे एक-एक शहीद के खून से सहस्र-सहस्र राष्ट्र के रत्न और माँ के दीवाने पैदा होंगे। अच्छा, अब मैं चलूँ।

(शिवाजी प्रणाम करते हैं, जीजाबाई उनके सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद देती हैं)

जीजा०—यशस्वी हो बेटा ! (प्रस्थान) ।

मोरोपंत—अच्छा, अब आज का उत्सव समाप्त होता है। एक बार फिर सब बोलो—छत्रपति श्री शिवाजी महाराज की जय !

(सब का जय बोलकर प्रस्थान, केवल चुने हुए मंत्री रह जाते हैं)

शिवाजी—भाइयो, स्वराज्य की संस्थापना से स्वराज्य का संरक्षण कहीं अधिक कठिन है। संस्थापना के बलिदान चमकदार होते हैं और उनका अस्तित्व क्षणस्थायी होता है, किंतु संरक्षण का युग तो दीर्घ होता है और उसका प्रत्येक क्षण नीरव बलिदान का तक़ाज़ा करता है। संस्थापना के उज्ज्वल बलिदानों की स्मृति हमारे पथ का प्रकाश बन सकती है, किंतु हमारा पथ तो हमारी रचनात्मक साधना ही हो सकती है, जिसका अंत सदा अनंत रहता है और जिसकी मंज़िल का प्रत्येक क़दम शक्ति और संयम की अपेक्षा करता है। मैं नहीं जानता कि आगे की साधना में मैं कहाँ तक सफल हो सकूँगा, पर मेरा सब से बड़ा संबल आप लोगों का सहयोग है। आशा है, मैं कभी उससे वंचित न हूँगा।

येसाजी—बन्धु, जीवन में पथ बदलते रहते हैं, पर जो चिरसहचर हैं, वे कभी नहीं बदला करते। हम लोगों के प्राणों का प्रत्येक अणु महाराज का निस्संदेह अनुवर्ती है और सदा रहेगा।

शिवाजी—अच्छा, तो मैं अब चलूँ। आप लोग इस उत्सव की सामग्रियों की यथास्थान व्यवस्था कराकर विशेष मंत्रणागार में आइए। वहाँ अपनी भावी योजनाओं पर विचार होगा।

(शिवाजी का प्रस्थान, कुछ अनुचरों का प्रवेश और अमात्यों के इंगित पर, क्रमशः पवित्र सामग्रियों आदि को ले जाना और एक के बाद एक अमात्य का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

——

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—रायगढ़। जीजाबाई रोग-शय्या पर)

जीजा०—(रुग्ण स्वर में) मुझे पता न था कि बिदा की घड़ी इतनी जल्द आ जायगी। मेरा बेटा वीर है। वीर ऊपर से वज्र की तरह कठोर होकर भी भीतर से फूल की तरह मुलायम होते हैं। युद्ध में अंधा-धुंध तलवार चलानेवाले प्रलयंकर शिवा के हृदय में इस अभागी के लिए इतनी कोमल ममता संचित है कि उसका अनुभव कर आश्चर्य होता है। क्या मेरी आँखों का तारा, मेरा लाल यह कठोर आघात सह सकेगा ?

(शिवाजी का प्रवेश)

शिवाजी—अब कैसी तबीयत है माँ ! मैंने यह कभी न सोचा था कि तुम ऐसे असमय पर बीमार हो जाओगी। मैं तो सारा

जीवन व्यस्त ही रहा। कभी तुम्हें सुख देने का अवसर न पा सका। अब ज़रा शांति का समय आता नज़र आया तो तुमने खाट ही पकड़ ली! अरे! यह क्या! दवा यों ही रखी है! तुम ने अभी तक दवा नहीं ली माँ! अच्छा, लो, मैं देता हूँ। दवा ले लो माँ! (प्याली में दवा भर कर देते हैं)।

जीजाबाई—न बेटा, अब दवा क्या करेगी? अब तो मेरे मुँह में तुलसी-पत्र डालो। देखते नहीं हो, यम का विमान उतर रहा है! उसे ये दवाएँ न रोक सकेंगी।

शिवाजी—यह तुम क्या कहती हो, माँ!

जीजा—भैया, मैं ठीक कहती हूँ! मैंने तुमसे उसी दिन प्राथना की थी, जिस दिन तुम्हारे पिता स्वर्ग सिधारे थे, कि मुझे सती-धर्म-पालन कर लेने दो। किंतु, तुम बोले, माँ राष्ट्र-धर्म-पालन में तुम्हारे सिवा मुझे कौन सहायता देगा? महाराष्ट्र देश को स्वतंत्र देखने की मेरी अभिलाषा ने भी तुम्हारी उस प्रार्थना की सिफ़ारिश की। मैंने वैधव्य स्वीकार किया, जो आर्य नारी के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है।

शिवाजी—राष्ट्र तो अब भी तुम से प्रकाश माँगता है, माँ!

जीजा—लेकिन, बेटा, मेरी साँसें अब अपनी गिनती पूरी कर चुकी हैं! मैंने अपनी आँखों से स्वतंत्र महाराष्ट्र में जनता के प्रतिनिधि शिवाजी का अभिषेक देख लिया है। मेरी मनोकामना पूर्ण हो गई!

शिवाजी—किंतु जनता की मनोकामना तो अभी पूर्ण नहीं

हुई। अभी तो संपूर्ण भारत तुम्हारी प्रेरणा का प्यासा है! वह हृदय के अन्तर्तम से तुम्हें पुकार रहा है।

जीजा—उस पुकार को मैं भी सुनती हूँ, किंतु जब दीपक में स्नेह ही नहीं रहा, तो केवल बत्ती उकसाने से क्या हो सकता है? अब मैं बूढ़ी भी तो हो गई हूँ, बेटा!

शिवाजी—किंतु, माँ जब तुम हिमालय की बर्फ के समान अपने श्वेत केश फैलाए भारत के कोने-कोने में घूमोगी तो देश में जाग्रति का एक ज्वार उठ खड़ा होगा! आज भारत भर में औरंगज़ेब की संदेह-वृत्ति और भेद-नीति ने असंतोष की चिनगारियाँ बिछा दी हैं, अब समय आया है कि उनमें फूँक मारकर भयंकर ज्वाला प्रज्वलित कर दी जाय! एक छोटी साधना की सफलता के बाद दूसरी महत्तर साधना का श्रीगणेश किया जाय! महाराष्ट्र में जो कुछ संभव हुआ है, उस पर संतोष करने को अधिक जी नहीं चाहता, अब तो भारत का नक्शा बदलने की उमंगें उठती हैं। और तुम यों मझधार में छोड़ जाने की बातें करती हो, माँ!

जीजा—यदि मेरा जीवित रहना संभव होता तो मैं सुखी ही होती। मनुष्य जितनी भी देश-सेवा करे, थोड़ी है। रोग-शय्या के स्थान पर यदि इस बुढ़ापे में रणभूमि में तुम्हारी माँ का शव सोता तो तुम और भी ज़्यादा अभिमान कर सकते थे!

शिवाजी—तुम पर मैं केवल इसलिए अभिमान करता हूँ कि तुम माँ हो! तुम्हारे उपकार अनंत हैं! जो परामर्श मित्रों और

मंत्रियों से मिलना दुर्लभ था, वह मुझे तुमसे मिला। जीवन के उषा-काल में जब प्रलोभनों ने दिल्ली के ऐश्वर्य की ओर खींचा तो तुम ने मुझे सह्याद्रि की चट्टानों पर सोने की प्रेरणा की। पत्नी के निधन पर जब वैराग्य और निराशा ने जंगल की ओर मेरे थके हुए पीड़ित प्राणों को आमंत्रित किया तो तुमने जन्मभूमि की याद दिलाई। आज शिवाजी जो कुछ है तुम्हारी सृष्टि है!

जीजा—नहीं भैया, तुम साक्षात् शंकर के अवतार हो। तुम अत्याचारियों का संहार और दीन-दुखियों की रक्षा करने के लिए उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी सृष्टि का सारा श्रेय जननी-जन्मभूमि को है। मुझ अकिंचन अबला में इतनी बड़ी विभूति के संगोपन की शक्ति कहाँ से आती? अब रही प्रोत्साहन की बात; सो जीजाबाई तो उसके योग्य भी न थी, उसने तो केवल भवानी की आज्ञा का पालन कर अपनी आँखों के तारे को आठों पहर मृत्यु के मुँह में रहने की प्रेरणा की थी।

शिवाजी—अच्छा माँ, तुम जो कहो सो सही! पर देखो, यह दवा तो तुमको पीनी ही पड़ेगी!

जीजा—नहीं भैया, मेरा काम समाप्त हो गया! स्वराज्य-साधना का कार्य एक व्यक्ति या एक पीढ़ी से नहीं हुआ करता। यह तो साधना की दीप-माला है, पीढ़ी-दर-पीढ़ी जलती रहनी चाहिए! जीजा जा रही है तो क्या हुआ? शिवा तो जीवित रहेगा! वह राष्ट्र को अपमान, दासता और मृत्यु के पंजे से छुड़ा-वेगा। मैं अधिक नहीं बोल सकूँगी! मेरे पास आओ शिवा!

और पास आओ बेटा ! (शिवाजी और निकट आकर बैठते हैं, जीजा-बाई सिर पर हाथ फेरती हैं) तुमने जो किया है, वह किसी दूसरे के लिए संभव न था। जाते समय मेरी एक सीख याद रखना— यह राजमुकुट और राज-दंड तुम्हारी व्यक्ति-गत सम्पत्ति नहीं है। इसको जिस दिन तुम या तुम्हारी आगामी पीढ़ी व्यक्तिगत संपत्ति समझेगी, उसी दिन राज्य-शक्ति को जनता का सहारा मिलना बंद हो जायगा ! जानते हो, उसका परिणाम क्या होगा ? युग-युगांतर-व्यापी परतंत्रता।

शिवा—तुम्हारे उपदेश के विरुद्ध शिवा कब चला है माँ ?

जीजा—अच्छा तो बिदा दो·····अब मैं········जाती हूँ !

(मृत्यु)

शिवा—माँ ! यह क्या माँ ! क्या तुम सचमुच चल दीं ! हे ईश्वर ! महाराष्ट्र आज अपनी प्रेरक मातृ-शक्ति को खोकर अनाथ होगया ! आज मेरी आत्मा का प्रकाश, आँखों की ज्योति, अंतर का बल चला गया ! अब शिवाजी एक मिट्टी का पुतला भर रह गया। माँ ·······माँ ·········तो अब तुम न बोलोगी, सचमुच न बोलोगी ! आह, क्या तुम चली ही गईं ? सुनो माँ ! आज सह्याद्रि की चट्टानें भी आठ-आठ आँसू रो रही हैं ! तुम शिवाजी ही की, महाराष्ट्र ही की नहीं, संपूर्ण भारत की माँ हो ! आँखें खोलो ! यह क्या विडम्बना है ! तुमने परतंत्र देश की आँखें खोल कर स्वयं आँखें बंद कर लीं ! हाय माँ ! (शिवाजी आँखें बंद करके बैठ जाते हैं, कुछ दासियों का प्रवेश और जीजाबाई के शव को उठाकर

ले जाना। शिवाजी आँखें खोलते हैं।) तो लोग तुम्हें श्मशान ले जाने की तैयारी करने लगे ! हाय रे मनुष्य-जीवन ! तू चाहे जितना ऐश्वर्यशाली हो, तेरा अंतिम सहारा श्मशान-भूमि ही है। आह ! आज हृदय मानों फटा जा रहा है। अभागे आँसू बहने के पहले ही सूख गए हैं।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[स्थान— प्रतापगढ़ का भवानी मन्दिर। दो पुजारी बैठे आपस में बातें कर रहे हैं]

पहला पुजारी—भैया वासुदेव, जब से माता जीजाबाई का देहान्त हुआ है, छत्रपति शिवाजी महाराज का जी राज-काज में ज़रा भी नहीं लगता ! सुना है, खाना-पीना भी छोड़ दिया है !

दूसरा पुजारी—हाँ भाई अनंत, सुना तो मैंने भी है ! पर, इस से राज्य की व्यवस्था बिगड़ जाने का डर है।

अनंत—यह तो ठीक है, लेकिन माँ की ममता भी तो कोई चीज़ है !

वासुदेव—इतनी ममता तो छोटे बच्चों में भी नहीं पाई जाती।

अनंत—जीजाबाई की बात ही कुछ और थी। वे महाराज के

लिए सर्वस्व थीं। महारानी सईबाई की मृत्यु के बाद से महाराज का जीवन माँ के आकर्षण से ही संसार से जुड़ा हुआ था। यदि वे न होतीं, तो उन्होंने कभी का संन्यास ले लिया होता।

वासुदेव—जीजाबाई के एक गुण की मैं भी प्रशंसा करूँगा। वे बड़ी ही उदार स्त्री थीं। एक बार राज-भवन से निमंत्रण आया था। सपरिवार जाना था। अपने शंकर को जानते ही हो, कैसा शैतान है! खाते-खाते दो लड्डू अँगोछे में छिपाकर रख लिए। सिपाहियों ने जब पकड़ लिया, तो महारानी एकदम गरम हो उठीं! मगर राजमाता तो राजमाता ही थीं। कहने लगीं—बच्चा है, जाने दो! और ऊपर से दो अशर्फ़ियाँ और दिलवाईं, बोलीं—इनसे इसे ख़ूब लड्डू लाकर खिलाना, जिससे चोरी पर नीयत न जाय। लड़का तब से ऐसा सीधा हो गया है जैसे गऊ! जो दे दो, सो खा लेता है!

अनंत—अरे बस कर अपनी रामकहानी। वह देख महाराज आ रहे हैं।

(शिवाजी अपने सरदारों के साथ पूजा करने आते हैं)

शिवाजी—आज माँ के स्वर्गवास को पूरे चार मास होगए! फिर भी मेरे हृदय का घाव ज़रा भी नहीं भरा। मुझे राज्य जंजाल जान पड़ता है और ऐश्वर्य अभिशाप। मुझसे अब यह सहन नहीं होगा।

येसाजी—भैया! तुम यह क्या कहते हो? स्वदेशोद्धारक वीर-वर शिवाजी के मुख से ऐसे वचन शोभा नहीं देते।

शिवाजी—क्या तुम नहीं जानते भाई, कि जीजाबाई का मूल्य शिवाजी के लिए क्या था ? मैं कैसे बताऊँ कि मैंने उन्हें खोकर क्या खो दिया ! भैया येसाजी, तुम्हें वह दिन याद है जब तुम्हारे साथ इसी भवानी के मंदिर में मैंने स्वराज्य-साधना के लिए तलवार पकड़ी थी, आज इसी भवानी के मंदिर में थके हुए हृदय से उसे वापस जनता के चरणों में अर्पित किए देता हूँ।

(तलवार रखकर भवानी की मूर्ति के आगे साष्टांग प्रणाम करते हैं—स्वामी रामदास का पीछे से प्रवेश)

स्वामी रामदास—शिवाजी !

शिवाजी—(उठकर) गुरुदेव ! (चरण छूते हैं) आप यहीं आ गए। मैं राज्य-भार जनता को सौंपकर आपकी सेवा में आ ही रहा था।

रामदास—शिवाजी ! मैंने तुम्हें इतना दुर्बल न समझा था। माँ के वियोग से दुखी होकर संपूर्ण राष्ट्र को निराश करोगे, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था। स्वयं वीरांगना जीजाबाई ने भी यह न सोचा होगा। आज शिवाजी को स्वराज्य-साधना के मध्य में तलवार छोड़ते देखकर स्वर्ग में बैठी हुई जीजाबाई क्या कहती होंगी ?

शिवाजी—अब नहीं सहा जाता गुरुदेव, यह जीवन एक यंत्रणा बन गया है।

रामदास—किंतु, देश की यंत्रणा इससे भी बड़ी है। उधर देखो, भवानी की मूर्ति की ओर देखो, वह क्या कहती है ? उस

विश्वविजयिनी कराला काली के आगे तुमने जो शपथ ली थी उसे आज तुम तोड़ने जा रहे हो। क्या तुम नहीं जानते आज समूचे सह्याद्रि की उपत्यकाएँ हाहाकार कर रही हैं--तुमने इस प्रदेश से अत्याचारी शक्ति को निकाल अवश्य दिया है, किंतु दीन, दुःखी किसान और मज़दूर सुशासन की, रोटी और कपड़े की माँग कर रहे हैं।

शिवाजी—जहाँ तक मुझ से हुआ उचित राज्य-प्रबंध मैंने कर दिया। सदियों से इस देश ने सुशासन का मुँह न देखा था। मैंने अष्ट-प्रधान-मंडल की स्थापना कर राज्य का एक-एक विभाग उन्हें सौंप दिया है! मैं अब छुट्टी चाहता हूँ!

रामदास—छुट्टी! कर्मयोगी की छुट्टी नहीं मिलती। कर्म-पथ बहुत विस्तृत है। तुम हाथ खींच लोगे तो स्वराज्य-विस्तार का कार्य रुक जायगा। क्यों येसाजी, तुम क्या समझते हो?

येसाजी—गुरुदेव, इस लोहे के हृदय, और पत्थर की आँखों से मैंने हज़ारों माताओं को पुत्रहीन होते, हज़ारों पत्नियों को विधवा होते और हज़ारों संतानों को आश्रयहीन होते देखा है। स्वातंत्र्य-साधना ऐसी ही कठोर है। गुरुदेव! भैया शिवाजी की वेदना को अनुभव करते हुए भी मैं यही कहता हूँ कि वे दिवंगत माता का जीता-जागता रूप दीन-दुःखी लोगों में पावेंगे। उनकी सेवा से उन्हें वही शांति मिलेगी जो माँ के स्नेह से मिलती है। अभी जन्मभूमि को शिवाजी की आवश्यकता है। उनके बिना स्वराज्य-साधना का कार्य रुक जावेगा।

शिवाजी--यह असंभव है। जन्मभूमि की अन्तःशक्ति अब जाग उठी है।

रामदास—फिर भी भारतीय-चरित्र की एक विशेषता—एक सद्‌गुण—उसका बहुत बड़ा दुर्गुण है। उसने व्यक्ति की पूजा को जाना है, लक्ष्य की साधना को नहीं। वह शिवाजी के कहने पर प्राण देने को तैयार है, स्वराज्य की साधना में स्वयं सेवा करने को तैयार नहीं। नेता के पथ-प्रदर्शन में इस देश की जनता असाध्य-साधन कर सकती है, किंतु नेता के अभाव में वह अबोध शिशु की भाँति असहाय बन जाती है। अपनी इस प्रकृति के कारण जहाँ वह स्वयं दुर्बल बनी रहती है, वहाँ उसे विश्व-विख्यात महा-पुरुषों के निर्माण का गौरव प्राप्त होता रहता है। किसी जाति की चिरंतन प्रकृतिगत विशेषता को एक क्षण में नहीं बदला जा सकता। इस समय यह सारी जाति तुम्हारे निर्णय की प्रतीक्षा में है। बोलो शिवाजी, क्या तुम अपनी साधना के महल के टुकड़े होते देखना चाहते हो? क्या तुम वीर-जननी जीजाबाई के स्वप्न को भंग होते देखना चाहते हो?

शिवाजी—नहीं, गुरुदेव!

रामदास—तो फिर यह निरुत्साह क्यों? उठाओ तलवार, जनता की आज्ञा है कि अभी यह खड्ग सुस्त न हो। जो कुछ तुमने किया है वह महान् है; किंतु, अंतिम क्षण तक जवानी और बुढ़ापा दोनों में समान रूप से अविरत साधना में निरत रहना तुम्हें अपनी माँ के जीवन से सीखना चाहिए। जो आता है वह

जाता है। कोई अपने आगमन से सूर्य की भाँति पृथ्वी और आकाश को लाल करता जाता है और कोई दिए की भाँति चुप-चाप बुझ कर चला जाता है। तुम महान् हो, तुम महातेज, महा-काल और महाबल के अवतार हो! जो लहर तुमने महाराष्ट्र में फैलाई है, उसे सारे भारत तक पहुँचाओ, जो ज्योति तुमने सह्याद्रि की गिरिमालाओं में ज्योतित की है, उसे हिमालय तक पहुँचाओ।

शिवाजी—गुरुदेव, आपने मेरा मोह भंग कर दिया। शिवाजी मर गया था, उसे आपने फिर जीवित कर दिया।

रामदास—भैया, यह स्वराज्य-साधना का कार्य, युग-युग की गुलामी की बेड़ियों को काटने का काम, एक-दो दिन में नहीं होता। यह काँटों और बाधाओं से भरा हुआ पथ है। इस पथ पर चलने की दीक्षा लेने वाले को माँ-बाप, भाई-बहन, धन-संपत्ति, लोक-परलोक सभी से आँखें फेरनी होती हैं! स्वतंत्रता से अमूल्य वस्तु कोई नहीं—धर्म भी नहीं! इसके साधक को इस पर सब कुछ बलिदान कर देना पड़ता है। अपना सुख, दुःख—अपना अच्छा बुरा लगना भी न्योछावर कर देना पड़ता है। तुम सब स्वराज्य के साधक हो, तुम्हें इस चरम लक्ष्य को कभी नहीं भूलना चाहिए। अन्य सब वेदनाओं को इस महान् वेदना में विलीन कर देना चाहिए। समझे! अच्छा तो आओ हम सब मिल कर महाराष्ट्र की आद्याशक्ति भवानी की आरती करें।

(शिवाजी भवानी की आरती करते हैं। सब मिलकर गाते हैं)

जयति-जयति जय जननि भवानी !

नर-मुंडों की माला वाली,
क्यों है तेरा खप्पर खाली,
माँ तेरे नयनों की लाली—
भरे राष्ट्र में नई जवानी !
जयति-जयति जय जननि भवानी !

धधक उठे भीषण रण-ज्वाला !
उठे हाथ तेरा असि-वाला !
गूँज उठे यह पर्वत माला,
गरज उठे तेरी जय वाणी !
जयति-जयति जय जननि भवानी !

[पटाक्षेप]

❀

❀ ❀

शब्दार्थ

पृष्ठ १२

सल्तनत = राज्य

निज़ाम = प्रबंध

आस्तीन = बाँह

अहसान = उपकार

बाग़ियों = विद्रोहियों

क़बूल = मंजूर

बग़ावत = विद्रोह

पृष्ठ १३

हुकूमत = शासन

साज़िश = षड्यंत्र

ग़ैर = पराया

पृष्ठ १४

कब्ज़े में = अधिकार में

शौहर = पति

मग़रिब = पश्चिम

इज़्ज़त = प्रतिष्ठा

मनसब = पद

नामुमकिन = असंभव

इनसान = मनुष्य

पृष्ठ १५

ज़िंदा दर-गार = जीते जी क़ब्र में गाड़ा जाना

बेलगाम = अनियंत्रित

क़ुर्बानी = बलिदान

हाज़िर = उपस्थित

पृष्ठ २३

ख़्वाहिश = इच्छा

बला = विपत्ति

गोया = मानों

बादशाहतों = राज्यों

हज़म कर चुके = पचा चुके

खतम = समाप्त

सिलसिला = क्रम

फ़तह = जीत

मेहमान = अतिथि

पृष्ठ २४

बेशक = निस्संदेह

सुबह = प्रभात

चिराग़ = दीपक

बरबादी = विनाश

तूफ़ान = आँधी

इंतज़ार = प्रतीक्षा

तारीकी = अंधकार

ख़ुदी = स्वार्थ

ख़्वाब = स्वप्न

नेस्त-नाबूद = नष्ट

शाहज़ादा = राजकुमार

इशारा = संकेत

महसूस = अनुभव

आज़ादी = स्वतंत्रता

लश्कर = सेना

ज़र्रा = कण

मददगार = सहायक

पृष्ठ २५

हौसला = साहस

रफ़्तार = चाल, गति

यकीन = विश्वास

रिहाई = मुक्ति

वादा किया = वचन दिया

हद = सीमा

बेहद = असीम

दौलत = धन

जुरंत = साहस

क़ासिद = दूत

ज़ाहिर = प्रकट

पृष्ठ २६

ज़िंदगी = जीवन

गुज़री = व्यतीत हुई

फ़ख्र = गौरव

मुल्क = प्रदेश

इजाज़त = स्वीकृति

पृष्ठ २७

तख़्त = गद्दी, सिंहासन

फ़ौरन = तुरंत

फ़िलहाल = अभी तो

हिफ़ाज़त = रक्षा

ख़िलाफ़ = विरुद्ध

वफ़ादारी = कर्तव्यनिष्ठा

सबूत = प्रमाण

पैग़ाम = संदेश

पृष्ठ २८

कूच = प्रस्थान

पृष्ठ ४५

कसम = शपथ

दरबार = राज-सभा

आसान = सरल

ख़ाक = भस्म

बिसात = शक्ति

ख़ामख़याली = व्यर्थ के विचार

होशियारी = चतुराई

सुलह = संधि

पृष्ठ ४६

मुलाकात = भेंट

शैतान = धूर्त

चोबदार = द्वारपाल

बेगमों = रानियों

पृष्ठ ४७

हुक्म-उदूली = आज्ञा भंग

रिश्तों = संबंधों

बेरहम = निर्दय

मर्द = पुरुष

क़ीमती = मूल्यवान

दाग़ = धब्बा

पृष्ठ ४८

बदतमीज़ = असभ्य

ख़ानदान = वंश

लुग़त = शब्दकोश

पृष्ठ ५४

दरहकीकत = वास्तव में

ख़ौफ़ = भय

ग़लती = भूल

क़हर = विपत्ति

लाग़र = निर्बल

गिरफ्तार = बंदी

किस्मत = भाग्य

दोज़ख = नरक

ज़ालिम = अत्याचारी

दरिया-दिल = उदार

फ़साद = झगड़ा

पृष्ठ ५५

मासूम = निरपराध

क़त्ल = हत्या

गुनाह = अपराध

पामाली = विनाश

इनसानियत = मनुष्यता

हतक = अपमान

खूनेनाहक = व्यर्थ की हत्या

ज़िम्मेदार = उत्तरदायी

हक़दार = अधिकारी

मुहब्बत = प्रेम

गवाह = साक्षी

हर्गिज़ = कभी

पृष्ठ ५६

गुमराह = पथ-भ्रष्ट

ज़बान = वाणी

माफ़ी = क्षमा

अज़ाब = पाप

खूँख्वार = हिंसक

निशानी = चिह्न

शख़्स = व्यक्ति

दीन = धर्म

पृष्ठ ५७

हक़ = कर्तव्य

दर-असल = वास्तव में

शर्मिंदा = लज्जित

आसार = लक्षण

गद्दीनशीनी = राज्यारोहण

दावत = निमंत्रण

दग़ाबाज = कपटी

पृष्ठ ५८

एलची = दूत

बेइज़्ज़त = अपमानित

हमला = आक्रमण

मौक़ा = अवसर

नतीजा=परिणाम

दुरुस्त=सही

ज़ुल्म = अत्याचार

नमाज़ = ईश्वर वंदना

पृष्ठ ६४

मक्कार = धूर्त

औलाद = संतान

पृष्ठ ६५

ओहदा = पद

हासिल = प्राप्त

फ़िज़ूल = व्यर्थ

मजाल = शक्ति

हस्ती = अस्तित्व

पृष्ठ ८०

ज़िंदादिली = सजीवता

इशरत = विलास

हुस्न = सौंदर्य

दिल-कश = मर्मभेदी

तराने = गाने

नियामत = वरदान

बख्शी = दी

अंदाज़ा = अनुमान

शायक = प्रेमी

नसीब = प्राप्त, सुलभ

मनहूस = रोनी सूरत

पृष्ठ ८१

साक़ी = शराब पिलाने वाला

अरमानों = कामनाओं

क़यामत = प्रलय

पृष्ठ ८२

बेफ़िक्र = निश्चिंत

शादी = विवाह

तनख्वाह = वेतन

ख़ाहमख्वाह = व्यर्थ

खलल = बाधा

पृष्ठ ८५

रोशन = प्रकाशित, उज्ज्वल

तख्ते ताऊस = मोर की शक्ल का सिंहासन

बेशुमार = असंख्य

काबू = वश

काफ़ी = पर्याप्त

ऐश-आराम = भोग-विलास

बुज़दिली = कायरता

पृष्ठ ८६

तशरीफ़ लाए = आए

लाज़िमी = आवश्यक

वाकई = वास्तव में

पृष्ठ ८७

रियाया = प्रजा

पृष्ठ ८८

शक = संदेह

मय = सहित

तमाम = सारे

पृष्ठ ८६

मातहती = अधीनता

राय = सम्मति

बेजा = अनुचित

इंतज़ाम = प्रबंध

फ़ायदा = लाभ

पृष्ठ ६६

नाकामयाब = असफल

अफ़सोस = शोक

सबब = कारण

पृष्ठ ६७

सिजदा = दंडवत्

मुकाबला = सामना

दिलेरी = वीरता

हैरत-अंगेज़ = आश्चर्य-जनक

नज़ारा = दृश्य

पृष्ठ ६८

बाग़-बाग़ = रोमांचित

शान = प्रतिष्ठा

जोश = उत्साह

पृष्ठ १००

दिलबस्तगी = दिल-बहलाव

गम गलत करना = शोक को भुलाना

ज़रिया = साधन

खुश्कों = नीरस लोगों

लुत्फ़ = आनन्द

ता ज़िंदगी = जीवन भर

सिपाह सालार = सेनापति

गुलछर्रे = आनन्द

मयस्सर = प्राप्त

नेकनामी = सुयश

पेशा = धंधा

बवाले-जान = जान को विपत्ति

आख़िर = अंत में

फ़य्याज़ी = उदारता

ईं जानिब = मैं

पृष्ठ १०१

मौजूद = उपस्थित

बर वक्त = कभी-कभी

ग़ायब = लुप्त

यकायक = अचानक

ग़ैरत = लाज

पृष्ठ १०२

लाचारी = बेबसी

दफ़्तर = कागज़ों के ढेर

शिकस्त = पराजय

दीदार = दर्शन

नसीब = प्राप्त

हिज्र = विरह

बदनसीब = अभागे

दामन = अंचल

पनाह = शरण

लानत = धिक्कार

ख़ाना-बदोशी = बेघरबार रहने की स्थिति

फ़ज़ल = कृपा

पृष्ठ १०३

जन्नत = स्वर्ग

तौबा = प्रायश्चित्त

लाहौल बिला कूवत = छिः छिः

यकसाँ = एक-सा

मकनातीस = चुंबक

पृष्ठ १०४

अदा = नख़रा

फ़िदा = आसक्त

शै = चीज़

गिज़ा = भोजन

पृष्ठ १०५

मुबारकबादियाँ = बधाई

शुक्र = धन्यवाद

सलामत = सुरक्षित

पृष्ठ १०६

काबिले तारीफ़ = प्रशंसा के योग्य

पृष्ठ ११०—१११

सालगिरह = जन्मदिन

पृष्ठ १११

गुस्ताख़ी = धृष्टता

ख़ातिर = आव-भगत

बहिश्त = स्वर्ग

हासिल = प्राप्त

पृष्ठ ११३

शाहजादी = राजकुमारी

ग़श = मूर्छा

ताज्जुब = आश्चर्य

फ़िक्र = चिंता

जहाँपनाह = संसार को शरण देने वाला, सम्राट

माजरा = मामला, बात

कायदे = नियम

पृष्ठ ११५

रूह = आत्मा

महज़ = केवल

पृष्ठ ११६

फ़रेब = छल

बोदे = निर्बल

पृष्ठ १२०

बरदाश्त = सहन

इल्तिजा = प्रार्थना

नज़रबंद = बंदी

शुक्रिया = धन्यवाद

हैवान = पशु

पृष्ठ १२८

सलूक = व्यवहार

पृष्ठ १२६

शांहशाह = सम्राट

शिकस्त = पराजय

फ़ितरत = छल

पुतला = मूर्ति

हैरान = चकित

मुग़ालता = झूठा विश्वास

रफ़ा = दूर

नाराज़ = अप्रसन्न

जहन्नुम = नरक

मगरूर = अभिमानी

पृष्ठ १३०

तलबगार = इच्छुक

पृष्ठ १३२

कफ़स = बंदीगृह

नियामत = अनोखी वस्तु

तमन्ना = अभिलाषा

हसरतों = अभिलाषाओं

बेवफा = कृतघ्न

पृष्ठ १३३

नागवार = असह्य

ज़ेवर = आभूषण

शाही = राजसी

महलसरा = सराय

जज़्बातों = भावनाओं

बेखबर = अबोध

पृष्ठ १३४

बागडोर = लगाम

रश्क = ईर्ष्या

मुलायम = कोमल

सदके = बलिहारी

निसार = न्योछावर

पृष्ठ १३५

बंदी = दासी

खुशनसीब = सौभाग्यशाली

उसूलों = सिद्धान्तों

बुलंदी = उच्चता

दीवानों = पागलों

बाशिंदों = निवासियों

बदतर = निकृष्टतर

पृष्ठ १३६

वीरान = निर्जन

मज़लूमों = पीड़ितों

खिदमत = सेवा

लमहा = क्षण

इख्तियार = वश

हक = अधिकार

हवस = लालसा

मंजिल = यात्रा

लक़ब = विशेषण

पृष्ठ १३७

ख़लकत = प्रजा

बेकरार = व्याकुल

हिमाक़त = धृष्टता

बेग़ैरत = निर्लज्ज

सौदा = मोल-तोल

जल्वा = दृश्य

क़यास = कल्पना

नादानी = भूल

मंज़िले-मकसूद = लक्ष्य

पृष्ठ १३७-१३८

नाचीज़ = अकिंचन

पृष्ठ १३८

फ़ना = नष्ट

तमन्ना = अभिलाषा

जंगे-आज़ादी = स्वतंत्रता का युद्ध

इत्तफ़ाक = एकता

तहेदिल = अंततम

कफ़नी = साधुओं की पोशाक

पृष्ठ १५५

सर करना = जीतना

मंशा = इच्छा

पृष्ठ १५६

फ़रमाबरदार = आज्ञापालक

बेख़ौफ़ = निर्भय

पृष्ठ १५७

कीना = जलन

सरकश = उद्दंड

आज़माना = परीक्षा लेना

— ——